TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186312
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 80.41 S55B. Accession No. H 2557

Author शिवनाथ।

Title भारतेंदु युगीन निबंध। १९२०

This book should be returned on or before the date last marked below.

भारतेंदु-युगीन निबंध

[भारतेंदु-युगीन निबंधों की व्यापक
गवेषणा और विवेचना]

लेखक

शिवनाथ एम० ए०

प्रकाशक

सरस्वती-मंदिर,

बनारस

पुस्तक-विक्रेता
नंदकिशोर एंड ब्रदर्स
चौक, बनारस

प्रथम संस्करण; १००० प्रतियाँ
संवत् २०१० वि०
मूल्य २॥)

मुद्रक
मुन्नीलाल
कल्याण प्रेस, बनारस

आदिबंध

प्रस्तुत पुस्तक में कुछ नवीन सामग्री के आधार पर भारतेंदु-युग के निबंधों की इयत्ता और महत्ता नापने-तौलने का प्रयत्न मैंने किया है। इससे यदि किंचित् भी नयी सूझ-बूझ साहित्य में आए तो मैं अपने को सफल समझूँगा। पुस्तक की सामग्री का संग्रह मैंने 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' से किया है। एतदर्थ मैं 'सभा' का बहुत ही कृतज्ञ हूँ। श्रीयुत व्रजरत्नदास के बहुमूल्य और दुर्लभ पत्र-पत्रिकाओं के संग्रह से भी मुझे पुस्तक के लिए काफी सामग्री मिली है। मैं इन महानुभाव का भी बहुत-बहुत अनुगृहीत हूँ। पुस्तक के शीघ्र प्रकाशन के लिए मैं अपने प्रकाशक बधु और भाई श्रीरामजी वाजपेयी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

शांतिनिकेतन
१. १. '५३.

शिवनाथ

सूची-बंध

१.	निबंध	३
२.	आरंभ	२६
३.	निर्माण	३४
४.	सामाजिक निबंध	४०
५.	साहित्यिक निबंध	६५
६.	शैली	१०१
७.	निबंध-शैली	१०६
८.	नामानुबंध	१-५

★

लेखक के अन्य ग्रंथ

१. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
२. आधुनिक साहित्य की आर्थिक भूमिका
३. हिंदी-नाटकों का विकास
४. भारतेंदु की कविता
५. अनुशीलन
६. मीमांसिका
७. हिंदी-कारकों का विकास

भारतेंदु-युगीन निबंध

१

निबंध

इस गद्य-प्रधान आधुनिक काल में गद्य को लेकर साहित्य-रचना का जो अंग विशेष रूप से परिपुष्ट, गुणसमन्वित तथा व्यापक बना और बनता चल रहा है उसका नाम है निबंध। अपनी अनेकरूपता के कारण वह वर्तमान साहित्य-विधान के क्षेत्र में अनेक दिशाओं में प्रसरित दृष्टिगत होता है। आज काव्य तथा कथा-साहित्य के अतिरिक्त जितना साहित्य प्रस्तुत हो रहा है वह निबंध के ही रूप में। निबंध की व्यापकता का कारण उसकी बहुरूपता के अतिरिक्त उसकी अनेकरूपता भी है। अभिप्राय यह है कि निबंध अपनी बहुरूपता, अनेक-प्रकारता और गुणसंनिविष्टि के कारण आधुनिक काल के साहित्य को उत्तरोत्तर प्रभावित करता और उस पर छाता चल रहा है। इस प्रकार निबंध का महत्त्व आज सहज ही बोधगम्य है।

आज निबंध का जो रूप हमारे संमुख है उसे देखने से स्पष्टतः लक्षित होता है कि वह एक गद्य-विधान है, वह गद्य की काया में सीमित होकर व्यक्त होता है। आधुनिक काल में गद्य ने खूब प्रतिष्ठा भी कमा ली है, आज उसका महत्त्व काव्य वा पद्य से कुछ कम नहीं आँका जाता—उत्तरोत्तर उसने अपने में इतनी विशिष्टताएँ संनिहित कर ली हैं। जीवन की व्यावहारिकता तथा गद्य को समक्ष रखकर हम इस (गद्य) पर विचार करें; तो भी इसका महत्त्व कुछ कम नहीं स्थापित होता। संसार के अनेक साहित्यों का आरंभ पद्य से चाहे हुआ हो और कुछ शतियों तक उसकी प्रधानता भी चाहे रही हो, पर यह सत्य है कि मानव-जीवन के आरंभ से ही नित्यप्रति के व्यवहार में गद्य ही प्रयुक्त रहा। भाषा की उत्पत्ति तथा उसके विकास के विषय में विज्ञ चाहे किसी भी 'वाद' की स्थापना का प्रतिपादन करें, इस तथ्य से उनका कहीं भी विरोध पड़ता नहीं दिखाई पड़ता। इस तथ्य का न अनुकरणमूलकतावाद से विरोध है और न मनोभावाभिव्यंज-कतावाद से ही; इसी प्रकार यह न यो-हे-हो-वाद में बाधक है और न डिंग-डँग-

बाद में ही। कारण यह है कि चाहे मानव को जंगली और बर्बर मानकर भाषा की उत्पत्ति और उसके विकास पर विचार किया जाय चाहे उसे शिष्ट और सर्वगुण-सम्पन्न मानकर यह ध्रुव निश्चित-सा जान पड़ता है कि वह अपनी किसी भी अवस्था में पद्य का प्रयोग अपने जीवन के नित्यप्रति के व्यवहार में न करता रहा होगा, गद्य का ही व्यवहार करता रहा होगा। विश्व-साहित्य के वे काल जिनमें साहित्य की सर्जना पद्य में ही होती रही, और यदि गद्य में होती भी थी तो यदाकदा और अत्यल्प, उन कालों में भी जीवन के व्यावहारिक पक्ष में गद्य का ही प्रयोग चलता रहा होगा, पद्य का नहीं। वस्तुतः बात यह है कि पद्य, जिसका ग्रहण काव्य-रचना के लिए साहित्य-क्षेत्र में सब से पहले हुआ, विद्या और बुद्धिबल सापेक्ष्य है। सामान्य व्यक्ति इसका प्रयोग और उपयोग करने में असमर्थ होता है। ऐसा हम काव्य वा साहित्य को दृष्टि में रखकर कह रहे हैं। तो, साहित्य के क्षेत्र में पद्य का ही ग्रहण सर्व प्रथम हुआ, पर व्यावहारिक दृष्टि से गद्य का प्रयोग पद्य की अपेक्षा प्राचीन निश्चित होता है। जो गद्य प्राचीन होते हुए भी साहित्य के क्षेत्र में गृहीत न किया जा सका था, कालांतर में उत्तरोत्तर विकसित और गुणसमन्वित होकर इस योग्य बना कि वह भी साहित्य-रचना के लिए गृहीत किया जा सके। वह इस क्षेत्र में गृहीत भी किया गया और आधुनिक काल में वह इतना समर्थ हो चुका है कि साहित्य के क्षेत्र में उसीका बोलबाला है। हमारा प्रतिपाद्य यह है कि गद्य जीवन के क्षेत्र में अपनी प्राचीनता, विस्तार और व्यापकता को स्थापित करता हुआ उत्तरोत्तर विकसित होकर साहित्य के क्षेत्र में भी अपनी व्यापकता की स्थापना अब कर चुका है; और निबंध की रूपरेखा गद्य की काया में ही व्यक्त होती है।

इसका तो निर्णय हुआ कि निबंध एक गद्य-विधान है। पर आज गद्य-विधानों की इतनी भरमार है कि निबंध की परिमिति सहसा बाँध लेनी एक जटिल समस्या हो गई है। अतः किस गद्य-विधान को हम निबंध कहें, इसका निराकरण करना होगा। ऊपरी रूपरेखा को दृष्टि-पथ में रखकर निबंधों पर विचार करने से विदित होता है कि जिस प्रकार काव्य के क्षेत्र में पद्य-मुक्तक होते हैं उसी प्रकार निबंध भी एक मुक्तक रचना है, शर्त केवल इतनी ही है कि वह गद्य में हो। अर्थात् निबंध गद्य-मुक्तक है, जिसे हम गद्य की विषय पर्यवसायिनी —अपने में ही सीमित—रचना के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। तो निबंध अपने में ही परिसीमित रचना है, उसका संबंध अन्य निबंधों से न होना चाहिए। इसे यों कहें कि निबंध में प्रबंधत्व न हो, वह एक दूसरे से बँधा न हो। ऐसी स्थिति में किसी पुस्तक के अध्याय की सीमा में सीमित गद्य-विधान एक दूसरे

से संबद्ध होने के कारण निबंध की श्रेणी में न आएँगे, क्योंकि उनमें पूर्वापर संबंध होने से उनका मुक्त व्यक्तित्व नहीं स्थापित किया जा सकता। जो ग्रंथ निबंध संग्रह द्वारा बनते हैं उनकी बात दूसरी है, उनमें तो निबंध हैं ही। यदि निबंधों की सीमा इस प्रकार न बाँधी जायगी तो साहित्य के गद्य-विधान के क्षेत्र में हमें निबंध ही निबंध दृष्टिगोचर होंगे और सभी गद्यकार ताल ठोंककर यह दावा करने के लिए आमादा हो जायँगे कि हम भी निबंधकार हैं; क्योंकि हमारी पुस्तक के प्रत्येक अध्याय एक-एक निबंध के ही रूप में तो हैं! पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं है और न समीक्षकों द्वारा इस प्रकार कभी ग्रहण हो की गई। आचार्य रामचन्द्र शुक्लकृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के प्रत्येक काल के सामान्य परिचय, उसमें आधुनिक कविता पर विवेचन तथा ऐसे ही अन्य स्थल कभी निबंध के रूप में गृहीत नहीं हुए और न उन्होंने ही कहीं उन्हें निबंध का नाम दिया। आधुनिक काल में निबंध का महत्त्व बढ़ जाने के कारण, उसकी स्वतंत्र सत्ता की स्थापना के लिए इस प्रकार का कुछ विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। यहाँ निबंध की बाह्य रूप-सीमा की एक स्थूल चर्चा इसलिए करनी पड़ी कि आगे 'निबंध' शब्द के प्रयोग पर कुछ विचार करना है। निबंध की आभ्यंतर रूप-सीमा का विवेचन तो अभी अपेक्षित ही है, जो यथास्थल होगा।

भारतीय तथा अभारतीय दोनों साहित्यों में वर्तमान काल में 'निबंध' और कुछ ही भिन्न अर्थों में गृहीत इसके पर्यायवाची शब्द 'प्रबंध' तथा 'लेख' का प्रयोग गद्य की ही रचना के लिए होता है। पहले इसके प्रयोग की सीमा गद्य तक ही न थी, वह पद्य की रचना के लिए भी प्रयुक्त होता था। इसी प्रकार 'प्रबंध' तथा 'लेख' शब्द के प्रयोग का विस्तार भी पद्य तक था। संस्कृत-साहित्य में 'निबंध' और 'प्रबंध' का प्रयोग किसी भी मौलिक रचना के लिए होता था।* गद्य और पद्य का बन्धन वहाँ नहीं प्रतीत होता। प्रायः पद्य की काया में स्थित प्रबंध काव्य की चर्चा आज भी हम करते हैं। इसी प्रकार पद्य-निबंध और

* यदक्षपादः प्रवरो मुनीनां
कामाय शास्त्रं जगतो जगाद।
कुतार्किका ज्ञाननिवृत्तिहेतुः
करिष्यते तस्य मया निबंधः॥
—श्रीभरद्वाजोद्योतकरकृत न्यायवार्तिक, श्लोक १।

× × ×

बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।
अनुज्झितार्थसंबंधः प्रबन्धोदुरुदाहरः।
—माघकृत शिशुपालवध, सर्ग २, श्लोक ७३।

पद्य-प्रबंध की बात भी यदाकदा हमारे साहित्य में होती है। अभिप्राय यह कि वर्तमान काल में निबंध तथा प्रबंध वा लेख का क्षेत्र केवल गद्य ही मान्य है, पर प्राचीनकाल में इसके लिए केवल गद्य का क्षेत्र ही निर्धारित न था। पद्य-रचना के लिए भी इसका प्रयोग समीचीन समझा जाता था। और; यदि तनिक गहरे पैठ देखा जाय तो विदित होगा कि प्राचीन काल में उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग प्रमुखतः पद्य की ही रचना के लिए होता था। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि पूर्व के कालों में कलाकारों की दृष्टि साहित्य के सभी अंगों की रचना के लिए पद्य के ही ग्रहण पर थी। उपर्युक्त शब्दों के अर्थों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि हम उन्हें किसी एक (गद्य वा पद्य) के दायरे में फेर भी नहीं सकते; क्योंकि पूर्वापर संबंध दोनों प्रकार की रचनाओं में हो सकता है—चाहे वे गद्य में लिखी जायँ अथवा पद्य में। वस्तुतः ये 'बंधान' के बोधक हैं, जो पद्य और गद्य दोनों ही शैली की रचनाओं में मिल सकता है।

निबंध, प्रबंध और लेख पर गद्य-पद्य की दृष्टि से यदि हिंदी-साहित्य को लेकर ऐतिहासिक विवेचन किया जाय तो विदित होगा कि भारतेंदु तथा द्विवेदी-युग के प्राचीन ढर्रे के कुछ लेखक, जिनका संबंध संस्कृत से था, इनका प्रयोग दोनों शैलियों में लिखी गई रचनाओं के लिए करते थे। जैसे—

यही समझकर राजा शिवप्रसाद सी० एस० आई० ने अपने गुटका के पहले और दूसरे खंड में भारतीय ग्रंथकारों के उत्तम उत्तम गद्य पद्य लेखों का संग्रह किया था जिनको विद्यार्थी बड़े प्रेम और श्रद्धा से पढ़ते और उनसे मातृभाषा का विशेष ज्ञान प्राप्त करते थे। †

× × ×

उसमें ('सरस्वती' में) भिन्न-भिन्न लेखकों के हिंदी पद्यमय अच्छे अच्छे निबंध छपते हैं। ※

प्रतीत ऐसा होता है कि द्विवेदी-युग के पूर्ण उन्मेष काल में (लगभग सन् १९१४ में) जब हिंदी-साहित्य में खड़ीबोली मँज-सँवर कर पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गई और जब इसमें नवीन शिक्षा-दीक्षा से भी पूर्ण लेखक लिखने लगे तब निबंध, प्रबंध और लेख के लिए गद्य की ही सीमा एकान्ततः स्वीकृत कर ली गई। इसके पूर्व यदाकदा कुछ लेखक इसका प्रयोग गद्य-पद्यमयी दोनों शैलियों की रचनाओं के लिए करते थे, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है।

† समालोचक, भाग १, अंक १ (सन् १९०२)।

※ समालोचक, भाग १, अंक ४ (सन् १९०२)।

निबंध वा उसके पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग की चलन गद्य और पद्य दोनों प्रकार की रचनाओं के लिए संस्कृत और हिंदी-साहित्य में ही नहीं थी, अँगरेजी साहित्य में भी इसके पर्यायवाची शब्द 'एसे' का प्रयोग पद्यमयी रचना के लिए भी कुछ लेखकों ने किया है। गद्य की रचना के लिए इसका प्रयोग तो है ही। अलेक्जेंडर पोप (सन् १६८८—१७४४) ने 'एसे ऑन मैन' और 'एसे ऑन क्रिटिसिज़्म' पद्य में ही लिखा था; यद्यपि निबंध का पर्यायवाची 'एसे' शब्द इन रचनाओं के साथ जुड़ा हुआ है।

निबंध, प्रबंध और लेख का प्रयोग कभी उन रचनाओं के लिए भी होता था जो पद्य-पद्धति में लिखी जाती थीं और उनके इस पद्धति में लिखे जाने का कारण भी था तथा उपयुक्तता भी थी। इसका विवेचन हम देख चुके हैं। पर, वर्त्तमान काल में जिसे हम निबंध कहते हैं और जो सच्चे अर्थों में निबंध है उसकी रचना पद्य में की जाय इसका; सपना भी नहीं देखा जा सकता। आज निबंध-रचना के लिए केवल गद्य का ही ग्रहण किया गया है, जो निबंध की विशिष्टताओं की अभिव्यक्ति का सरल और सहज साधन है।

हिंदी-साहित्य में गद्य की जिस प्रकार की रचना के लिए आज 'निबंध' शब्द का प्रयोग होता है उस प्रकार की रचना के लिए इस शब्द का प्रयोग भारतेंदु-युग के लेखक—जिनमें से कुछ द्विवेदी-युग के उन्मेष काल तक विद्यमान थे—करते नहीं दिखाई पड़ते। उपर्युक्त युग के लेखक 'निबंध' के अर्थ में 'लेख' शब्द का प्रयोग करते थे, जो आज 'निबंध' का अति सामान्य प्रकार समझा जाता है—विवेचकों की दृष्टि से। वैसे तो इस शब्द के प्रयोग द्वारा इसके अंतर्गत आज 'निबंध', 'प्रबंध' सभी आ जाते हैं। यद्यपि उस युग के लेखक 'लेख' शब्द का प्रयोग करते थे—'निबंध' के अर्थ में—तथापि उनके लेखों में वर्तमान काल में गृहीत निबंध की सभी विशिष्टताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। तत्कालीन लेखकों के निबंध के अवलोकन द्वारा यह बात प्रमाणित हो जायगी। इस तथ्य की पुष्टि के लिए कुछ उदाहरणों की आवश्यकता प्रतीत होती है। भारतेंदु श्री हरिश्चंद्र द्वारा संपादित 'श्री हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' के आदर्श वाक्य में 'लेख' शब्द का ही प्रयोग है—

नवीन, प्राचीन संस्कृत भाषा और अंगरेजी में गद्य पद्य मय काव्य, प्राचीन वृत्त, राज्य संबंधी विषय, नाटक, विद्या और कला पर लेख, लोकोक्ति, इतिहास, परिहास, गल्प और समालोचना संभूपिता।*

---

* श्री हरिश्चंद्रचंद्रिका, खंड १, संख्या ९ (जून, सन् १८७४ ई०)

भारतेंदु युग के लेखक श्रीबालकृष्ण भट्ट तथा श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भी 'लेख' शब्द का ही प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं—

लेख पढ़ कुंद की कली समान दाँत न खिल उठे तो वह लेख ही क्या !†

× × × ×

"जिन्होंने (श्रीबालकृष्ण भट्ट ने) हिंदी की अमूल्य सेवा कर सब लोगों में हिन्दी पत्र पठन की रुचि उत्पन्न की जब हिंदी पत्रों की संख्या कदाचित् दो तीन से अधिक न थी और तब से अब तक उनके लेख बहुत आदर और प्रतिष्ठा से पढ़े जाते हैं,…‡

यों ही अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इनके द्वारा विदित होता है कि जब हिंदी-साहित्य में निबंध-रचना का आविर्भाव-काल था तब उसके लिए 'लेख' शब्द का ही प्रयोग होता था। एकाध स्थल ऐसा भी प्राप्त होता है जहाँ 'लेख' और 'प्रबंध' समानार्थबोधक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। 'एक वंग महिला' अपने 'गृह' शीर्षक निबंध की पाद-टिप्पणी में लिखती हैं—

यह प्रबंध प्रवासी नामक (बंगला) मासिक पत्र के लेख का मर्मानुवाद है।††

यद्यपि यहाँ 'लेख' के समान अर्थ में 'प्रबंध' का प्रयोग हुआ है तथापि आज 'प्रबंध' द्वारा जो विस्तार तथा विषय-प्रतिपादन मात्र में निष्ठता का बोध होता है वह उक्त 'गृह' निबंध में नहीं है। इसकी काया छोटी है और उस समय के निबंध जिस रूप में व्यक्त होते थे इसका रूप भी वही है।

इस विवेचन का अभीष्ट यह है कि आधुनिक काल में, जो गद्य काल के नाम से अभिहित होता है और जिस काल के आरंभ में गद्य में साहित्य के विविध अंग प्रस्तुत होने आरंभ हुए, पहले 'निबंध' के लिए 'लेख' शब्द का ही प्रयोग होता था। उस काल के लेखक लेख के लिए 'प्रबंध' का भी प्रयोग करते थे पर विरलतः ही। इसका भी उल्लेख हो चुका है। ढूँढ़ने पर 'निबंध' का भी प्रयोग मिल सकता है, पर इसे भी विरल ही समझना चाहिए। हमारी दृष्टि तो ऐसे शब्द पर है जो सभी लेखकों द्वारा प्रचुरतः प्रयुक्त होता था। साहित्य में प्रयोग की प्रचुरता ही किसी तथ्य के प्रमाण का हेतु हो सकता है। भारतेंदु श्री-

---

† हिंदी-प्रदीप, जिल्द २३, संख्या १।२।३ (सन् १९०० ई०)

‡ आनन्द कादंबिनी, माला ६, मेघ ११, १२ (सं० १९६३)

†† वही, माला ५, मेघ ५, ६ (सं० १९६१)

हरिश्चन्द्र तथा उनके युग के अन्य लेखकों के उदाहरण ऊपर दिए गए हैं। इन लेखकों में से श्री भारतेंदु के अतिरिक्त प्रायः सभी द्विवेदी-युग में विद्यमान थे। हमारा प्रतिपाद्य यह भी है कि उस समय जिस प्रकार की रचना के लिए 'लेख' शब्द का प्रयोग होता था वह 'निबंध' के आधुनिक निर्धारित विशिष्टताओं से अनेक अंशों में युक्त था। एक विशिष्ट प्रकार की गद्य की रचना के लिए 'निबंध' का प्रयोग विशेष प्राचीन नहीं प्रतीत होता। इस प्रकार की रचना के लिए 'निबंध' का प्रयोग द्विवेदी-युग की पूर्ण प्रतिष्ठा के समय से ही समझना चाहिए—लगभग उसी समय से जिस समय से यह निश्चित रूप से स्वीकृत कर लिया गया कि निबंध पद्य में नहीं गद्य में ही लिखा जा सकता है। निबंध से हमारा तात्पर्य विशिष्ट प्रकार की आधुनिक गद्य रचना से है, जिसे आज निबंध कहा जाता है, पद्य-निबंध से नहीं।

निबंध की रूप-विवेचना के पूर्व इसका निर्देश आवश्यक प्रतीत होता है कि आधुनिक काल में भारतीय वा हिंदी-साहित्य में निबंध-लेखन की प्रेरणा अभारतीय वा पश्चिमी साहित्य से ही मिली। भारत के प्राचीन साहित्य में निबंध का जो रूप था, जिसका दर्शन यथास्थल अन्यत्र होगा, उसका कोई अंश आधुनिक काल के निबंधकारों में नहीं दिखाई पड़ता। आधुनिक काल के निबंधकारों से अभिप्राय है उन निबंधकारों से जो निबंध के आविर्भाव-काल—भारतेंदु-युग—में थे, जिनके द्वारा निबंध-लेखन का श्रीगणेश हुआ। भारतेंदु-युग के निबंधकारों के अतिरिक्त तत्कालीन भारत के अन्य साहित्यों के निबन्धों वा निबन्धकारों के विषय में भी यही समझना चाहिए। तत्कालीन साहित्यकारों का इस क्षेत्र में अभारतीय साहित्य से प्रेरित होने के लिए अनेक कारण भी विद्यमान थे। उस समय तक अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा के समुचित प्रबंध के कारण भारतीय शिष्ट जनता अँगरेजी-साहित्य के सांनिध्य में भली प्रकार आ चुकी थी और आ भी रही थी। ऐसी स्थिति में अभारतीय साहित्य की प्रेरणावश हिंदी की उन्नति को सदैव दृष्टि-पथ में रखकर चलनेवाले उस समय के साहित्यकार अपने साहित्य में एक नवीन प्रकार की साहित्य-विधान-शैली के संनिवेश का लोभ संवरण नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने गद्य का अवलंबन कर निबंध-रचना का आरंभ किया। भारतीय साहित्य की परम्परा में निबंध का जो रूप था उसकी ओर तत्कालीन साहित्यकारों की दृष्टि न जाने के कई कारण थे। प्रथमतः तो यहकि जो आकर्षक वस्तु संमुखित उपस्थित थी उसके द्वारा लोगों का प्रभावित होना स्वाभाविक था। द्वितीयतः यह कि भारतेंदु के समय तक आते-आते संस्कृत-

साहित्य का अध्ययन-मनन तथा उसकी परंपरा का सम्यक् परिचय मध्यम श्रेणी की विद्या-बुद्धिवाले व्यक्ति के लिए कुछ दूर पड़ गया था—विशेषतः अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा, आचार-व्यवहार और रीति-नीति के प्रति लोगों की अभिरुचि आकृष्ट कर लेने के प्रयत्नों के कारण। और; तृतीयतः तथा मुख्यतः यह कि भारतीय साहित्य में निबंध का जो पद्य-गद्यमय—कारिका-वृत्तिमय—रूप था; यथा—'काव्य-प्रकाश,' 'रसगंगाधर' आदि में; तत्कालीन एकांततः गद्यमय निबंध से उसका मेल नहीं खाता था। हम कहना यही चाहते हैं कि हिंदी-साहित्य में निबंध-लेखन की प्रेरणा पश्चिमी है, सत्य यही है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हाँ, उन लोगों के सामने हमें यह बात दो कदम पीछे हटकर और चेहरे पर कुछ भय का भाव लाकर कहनी होगी जो पहले तो किसी वस्तु को दूसरे देश के साहित्य से ग्रहण कर लेते हैं और बाद में यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं कि हमारी प्रेरणा भारतीय है, विदेशी नहीं। आज हिंदी में एकांकी नाटकों, रचना की कुछ अन्य पद्धतियों और इसी प्रकार कुछ दूसरी प्रवृत्तियों का भी मूल कुछ लोग ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भारतीय साहित्य के आदि ग्रंथों तक पहुँचते हैं; यद्यपि आधुनिक काल में इनका ग्रहण विदेशी साहित्य से ही हुआ। समरथ के नहिं दोस गुसाईं ! चाहे इस प्रकार के प्रतिपादन का सामर्थ्य वेदों और उपनिषदों के अँगरेजी अनुवादों को पढ़ने से ही आवे !!

— निबंध के रूप-दर्शन की सुविधा के लिए उसके बहिरंग और अंतरंग को पृथक्-पृथक् देखना उचित प्रतीत होता है। पहले हमारी दृष्टि उसके बहिरंग पर ही जायगी। निबंध के बहिरंग से हमारा अभिप्राय उसकी काया वा उसके आकार-प्रकार और विस्तार से है। निबंध गद्य की एक छोटी रचना है, इसका बोध स्वतः 'निबंध' शब्द द्वारा ही होता है। 'निबंध' का 'नि' उपसर्ग लघुता का ही बोध कराता है। तात्पर्य यह कि निबंध की काया छोटी होती है, उसका आकार-प्रकार विस्तृत नहीं होता। निबंध के आकार की लघुता को पश्चिमी समीक्षक भी स्वीकार करते हैं। प्रश्न होता है वह कितना छोटा हो? इसके समाधान के दो ही मार्ग दृष्टिगत होते हैं। एक तो निबंध के लिखित वा मुद्रित रूप को देखकर और दूसरे उसके पढ़ने के समय को देखकर। निबंध की काया के विषय में इन दृष्टियों से विचार पर मतैक्य की संभवाना नहीं दिखाई पड़ती। कोई कुछ कह सकता है, कोई कुछ। फिर भी स्थूल रूप से इस पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि बड़ा से बड़ा निबंध तीस-चालीस पृष्ठों से अधिक नहीं होना चाहिए और वह अधिक से अधिक इतना बड़ा हो कि घंटा-सवाघंटे में समाप्त हो जाय। स्मरण रखने की बात यह है कि निबंध की काया के

विस्तार के विषय में यह विचार अत्यंत स्थूल प्रमाणित हो सकता है। यहाँ एक संमति की दृष्टि से ही इस प्रकार की बात कही गई है। पर इस विषय में निश्चित रूप से यह तो कहा ही जा सकता है कि निबंध का बाह्य रूप छोटा होना चाहिए और वह इतना छोटा हो कि थोड़े समय में ही पढ़कर समाप्त किया जा सके।

निबंध के अंतरंग-दर्शन से हमारा अभिप्राय उसके उन तत्त्वों वा विशिष्टताओं की विवेचना से है जिनका संविधान सच्चे अर्थों में गृहीत निबंध के लिए आवश्यक माना गया है। इसमें तो संदेह नहीं कि गद्य-प्रधान आधुनिक काल में निबंध साहित्य का एक अंग स्वीकृत हो चुका है। अतः निबंध में साहित्योचित विशेषताओं का होना आवश्यक है। उसमें वे तत्त्व होने चाहिए जिनके द्वारा श्रोता वा पाठक का मन रम सके, जैसा कि साहित्य द्वारा रमता है। निबंध में मन रमाने की शक्ति है और शिष्ट साहित्यिक श्रोता और पाठक का मन उसमें रमता है, यह निर्विवाद है। निबंध को लेकर इस निर्विवादिता के समर्थन के लिए गद्य-प्रधान आधुनिक काल के साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों पर दृष्टि डालनी होगी। साहित्य का गद्य-प्रधान आधुनिक काल बुद्धि-प्रधान काल है, जिसका आरंभ ईसा की उन्नीसवीं शती के चतुर्थ चरण से हो गया था और जो इस बीसवीं शती में पूर्णतः व्याप्त है। साहित्य का यह काल सामाजिक दृष्टि से इतना संघर्षमय रहा कि जो साहित्यकार समाज और साहित्य का घनिष्ट संबंध स्वीकार करते थे वे संघर्ष-शांति के प्रयत्न के हेतु साहित्य में समाज के चित्रण पर विशेष दृष्टि रखने लगे। संघर्ष-शांति के लिए वे अपने साहित्य में सुझाव भी पेश करने लगे, जो कभी साहित्य के आवरण में पूर्णतः ढँका रहा और कभी नग्न उपदेशवाद के रूप में विद्यमान था। इस प्रकार समाज पर अधिक दृष्टि होने के कारण और उसके सुधार की आकांक्षावश इन साहित्यकारों की दृष्टि साहित्य के क्षेत्र में बुद्धिवादी थी। ये लोग अपने साहित्य में समाज की समस्याओं को रखकर उसका समुचित हल पेश करने का प्रयत्न करते थे, जिसका संबंध अवश्य ही बुद्धिवाद से है। साहित्य के आधुनिक काल में गद्य की प्रधानता का विशेष कारण यह बुद्धिवाद ही है, जिस गद्य द्वारा हमारी बुद्धि का प्रकाश सुविधापूर्वक हो जाता है। इस प्रकार के साहित्यकारों द्वारा साहित्य के उन अंगों और उन शैलियों की गौणता प्रतिपादित की गई जिनका संबंध हृदय से विशेष है। यही कारण है कि साहित्य के क्षेत्र में इस काल में काव्य-धारा का प्रवाह मंद और क्षीण दिखाई पड़ता है। इन लोगों ने काव्य-रचना गौणरूप से ग्रहण की और काव्य के ही समकक्ष प्रतिष्ठित

होनेवाले साहित्य के अंग नाटक का ग्रहण तो किया पर उसकी काव्यात्मकता को उससे वंचित रखकर। नाटक में इन्होंने गद्य के तत्त्वों और शैलियों का संविधान विशेष रूप से किया। इनका प्रधान क्षेत्र साहित्य का एक दूसरा अंग, जिसे कथा कहा जाता है और जिसके भीतर उपन्यास और कहानी आती है, रहा। इन लोगों ने नाटक को भी ऐसा रूप दिया कि वह कथा-साहित्य से कुछ विशेष भिन्न नहीं रहा, यदि रहा तो केवल संवाद, अभिनय की दृष्टि से। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन साहित्यकारों की दृष्टि विशेषतः नाटक, उपन्यास और कहानी पर रही, जो गद्य की काया में व्यक्त होते हैं और जिनमें प्रायः समाज की समस्याएँ ही विशेषतः प्रदर्शित की जाती हैं और प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः उनका हल भी। हम यह बता चुके हैं कि बुद्धिवाद के कारण साहित्य का यह रूप वर्तमान काल में आया। साहित्य के उपर्युक्त अंगों में व्यक्तिवैचित्र्यवाद की प्रधानता का कारण भी बुद्धिवाद ही है, क्योंकि ये साहित्यकार अपनी रचनाओं में अपने लक्ष्य वा संदेश की अभिव्यक्ति द्वारा श्रोता पाठक वा दर्शक की बुद्धि को प्रधानतः प्रभावित करना चाहते थे और हृदय को गौणतः; और इसकी सिद्धि के लिए व्यक्तिवैचित्र्यवाद का साधन ही विशेष उपयुक्त था। हमारी धारणा यह है कि साहित्य-क्षेत्र में व्यक्तिवैचित्र्यवाद का ग्रहण बुद्धि को ही प्रभावित करने के लिए विशेष रूप से हुआ। इस प्रकार विदित होता है कि आधुनिक काल में बुद्धिवाद की प्रधानता के कारण गद्य का ग्रहण हुआ और उसमें साहित्य के अनेक अंगों की रचना होने लगी। साहित्य के इन अंगों की रचनाओं में साहित्यकार की दृष्टि हृदय को प्रभावित करने की ओर उतनी नहीं दिखाई पड़ती जितनी बुद्धि को प्रभावित करने की ओर; इसका कारण सामाजिक संघर्ष था, इसे हम देख चुके हैं। अभिप्राय यह कि अब साहित्य बुद्धिप्रधान हो चला था, हृदय के लिए भी उसमें स्थान था, पर गौण। ये बातें हमने किसी एकदेशीय साहित्य को दृष्टि-पथ में रखकर नहीं कही हैं प्रत्युत विश्व-साहित्य को दृष्टि-पथ में रखकर। ऐसा कहने का कारण यह है कि आधुनिक काल गद्य-काल के रूप में सभी देशों के साहित्यों में गृहीत है और उनके साहित्यों की प्रवृत्तियाँ प्रायः समान हैं। यहीं यह भी कह दिया जाय कि हमारे वर्तमान साहित्य का रूप भी इसी प्रकार का है। साहित्य के क्षेत्र में गद्य का ही आश्रय लेकर उसके एक अंग निबंध की रचना की चलन भी अपने सच्चे अर्थ में इसी समय हुई। इसमें भी हृदय और बुद्धि की नियोजना का परिमाण उतना ही रहा जितना साहित्य के अन्य अंगों में। अर्थात् निबंध में भी बुद्धि प्रधान रही और हृदय गौण। कहना तो यह चाहिए कि बुद्धि के प्रकाश के लिए ही साहित्य के इस

अंग का ग्रहण हुआ। बुद्धि अपना रूप साहित्य के अन्य अंगों में भली भाँति नहीं दिखा सकती थी, विचारों का आदान-प्रदान, प्रतिपादन आदि साहित्य के दूसरे अंगों में भली प्रकार नहीं होता था, अतः उसके एक ऐसे अंग का ग्रहण एकांततः कर लिया गया, जिसके द्वारा उपर्युक्त कार्य सिद्ध हो जाय, और इसी कार्य-सिद्धि के लिए निबंध का ग्रहण हुआ। पर, वह साहित्य साहित्य नहीं, जिसमें बुद्धि ही अपने दाँत कटकटाती रहे, वह तो तर्क और गणित शास्त्र हो जायगा। ऐसी स्थिति में निबंध में हृदय की नियोजना का भी प्रवेश निर्धारित किया गया। हाँ, इसमें हृदय की गौणता अवश्य होगी। अब हम उस प्रश्न का उत्तर दे दें जो इस विवेचन के पूर्व उठा था—क्या निबंध में मन रमाने की शक्ति है? यदि आधुनिक काल में निर्मित बुद्धिप्रधान साहित्य के अन्य अंगों में हृदय को रमाने, मन को चमत्कृत करने की शक्ति है तो यह निर्विवाद है कि उसी श्रेणी में प्रतिष्ठित निबंध में भी वह शक्ति अवश्य है। यदि आधुनिक काल में निर्मित नाटक और कथा-साहित्य में रमणीयता है तो कोई कारण नहीं कि सच्चा निबंध यह रमणीयता न धारण करता हो, आवश्यकता केवल शिष्ट रुचि के साहित्यिक श्रोता और पाठक की है।

ऊपर की मीमांसा से यह स्पष्टतः लक्षित होता है कि निबंध गद्य की एक बुद्धिप्रधान रचना है, अर्थात् विचारप्रधान रचना है, अर्थात् विचारात्मक रचना है। इसमें निबंधकार अभीष्ट विषय पर विचार बुद्धिपूर्वक करता है; और इस प्रकार विचार करते हुए वह उस (निबंध) में जो वस्तु नियोजित करता वह उस (निबंधकार) की बुद्धि की नवीन-नवीन उद्भावनाओं की लड़ी-सी प्रतीत होती है। निबंध में निबंधकार अभीष्ट विषय का प्रतिपादन आद्योपान्त बुद्धिपूर्वक करता हुआ अपनी नवीन-नवीन चिंतनाओं की शृंखला को उस (निबंध) में सजाता है। चिंतनाओं की इस शृंखला के कारण निबंध में आदि से अंत तक एकतानता का संनिवेश हो जाता है, जो निबंध के प्रधान तत्त्वों में से एक है। इस प्रकार विदित होता है कि निबंध में अभीष्ट विषय का प्रतिपादन बड़े चुस्त वा कसे रूप में होता है। 'निबंध' शब्द में पड़ा 'नि' उपसर्ग निबंध की काया की ओर तो संकेत करता ही है वह उसमें प्रतिपाद्य विषय के लाघव वा उसकी चुस्ती का भी बोध कराता है, क्योंकि 'नि' द्वारा 'नैकट्य' का भी अर्थागम होता है। निबंध में 'नैकट्य' का अभिप्राय होगा उसमें प्रतिपाद्य विषय का पास-पास होना, उसमें चुस्ती का संनिवेश। निबंध पर यह विचार निबंधकर्ता को दृष्टि में रखकर हुआ है। निबंध वा साहित्य के किसी भी अंग का एक दूसरा पक्ष भी होता, और वह पक्ष कर्ता के पक्ष से

किसी भी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता, क्योंकि कर्ता की रचना का साफल्य उसी पक्ष में जाकर सिद्ध होता है। वह पक्ष है श्रोता, पाठक और दर्शक का। निबंध को लेकर केवल श्रोता और पाठक का—विशेषतः पाठक का ही—पक्ष आता है। निबंध का जो रूप ऊपर स्थापित किया गया है उसके अनुसार पाठक को भी निबंध के अध्ययन-मनन के हेतु बुद्धि का श्रम करना पड़ेगा, तभी वह उसकी वस्तु को पचा पायगा, अन्यथा नहीं। वस्तुतः निबंध कोई मगदल नहीं है कि मुँह में रखकर धीरे से गले के नीचे उतार गए! इस प्रकार हम देखते हैं कि निबन्ध की रचना की सार्थकता तथा उसके बोधन की सार्थकता दोनों के लिए बुद्धि की—सतर्क बुद्धि की—आवश्यकता है। यहाँ यह शंका उठ सकती है कि क्या इस प्रकार की बुद्धिप्रधान रचना निबंध) साहित्य की परिमिति में स्थित रहेगी, क्या वह दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र में न चली जायगी? इसका समाधान यह है कि वस्तुतः निबंध साहित्य के क्षेत्र की वस्तु है, वह कभी रूखा-सूखा हो ही नहीं सकता। वह इस प्रकार कि निबंध के अन्य तत्त्व भी हैं, जिनका संनिवेश उसमें होगा और इन तत्त्वों का संबंध हृदय से है; जैसे उसमें व्यक्तित्व, हास्य-व्यंग्य-विनोद आदि की अभिव्यक्ति, जिनकी चर्चा आगे होगी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि निबंध साहित्य का एक अंग है और उसकी रचना साहित्यकार द्वारा होगी, अतः वह निबन्ध में साहित्यिकता की नियोजना करेगा। साहित्यिक होने के नाते वह जो कुछ कहेगा उसे साहित्यिक ढंग से और साहित्य को दृष्टि-पथ में रखकर। और, इस प्रकार के व्यक्ति द्वारा रचित निबंध का पाठक भी साहित्यिक रुचि-संपन्न व्यक्ति होगा। ऐसी स्थिति में, कर्ता, बोधक और बोधव्य सभी के साहित्यिक होने पर; निबंध में रूक्षता और नीरसता कहाँ से आयगी?

इस मीमांसा द्वारा निबंध का जो सच्चा और शिष्ट रूप निर्धारित होता है, उसका निबंधकार द्वारा निबंध में संनिविष्ट होना हँसी-खेल नहीं है। वस्तुतः निबंध रचना एक दुष्कर कार्य है। इसे भारतीय तथा अभारतीय सभी समीक्षक स्वीकार करते हैं। इस विषय में श्रीरामचंद्र शुक्ल, * अँगरेज समीक्षक

---

* यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है।

—आचार्य रामचंद्र शुक्लकृत 'हिंदी-साहित्य का इतिहास,' पृष्ठ ६०५, सं० १९९७ वि०

श्री जे० डब्ल्यू० मैरियट* और फरांसीसी समालोचक श्री सांतब्वे एक मत हैं। श्री सांतब्वे की मान्यताएँ निबंध के विषय में प्रायः वैसी ही हैं जैसी ऊपर निर्धारित की गई हैं। यह स्वीकार करते हुए कि निबंध-रचना एक अति कठिन कार्य है और ऐसी अवस्था में किसी विषय पर निबंध लिखने के लिए निबंधकार को उस विषय का पूर्ण पंडित होना चाहिए उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि निबंध साहित्यिक अभिव्यक्ति की एक मनोरंजक प्रणाली है। यहाँ स्मरण रखने की बात यह है कि श्री सांतब्वे की दृष्टि भी निबंधगत साहित्यिकता पर है। वे निबंध को चुस्त वा गागर में सागर भरी रचना मानते हैं। निबंध की काया की लघुता पर भी उनकी दृष्टि है, साथ ही वे निबंध की अपने में ही पूर्णता का भी प्रतिपादन करते हैं।†

निबंध के रूप के अंतरंग तत्त्व की जो चर्चा ऊपर हुई है अँगरेजी समीक्षक और निबंधकार इस विषय में प्रायः इससे विपरीत मत प्रकट करते हैं। उन्होंने निबंध के रूप के विषय में जो धारणाएँ स्थापित की हैं वे (धारणाएँ) हमारे यहाँ के शिष्ट साहित्यकारों को अगूढ़ (सुपरफिसियल) प्रतीत होंगी। स्वतः यहाँ के कुछ समीक्षकों को भी वे इसी रूप में जान पड़ी हैं। अँगरेजी-साहित्य में निबंध के अगूढ़ रूप-निर्धारण के लिए हम किसी को दोषी नहीं ठहरा सकते, क्योंकि यह रूप-निर्धारण जिस प्रकार के निबंध लक्ष्य रूप में प्रस्तुत हो चुके थे उनको दृष्टि-पथ में रख कर हुआ है। और; ऊपर निबंध का जो रूप-निर्धारण हुआ है उसमें भारतीय परंपरा में चली आती हुई चिंतन-प्रवृत्ति का ध्यान अवश्य रखा गया है। अपने यहाँ के 'निबंध' शब्द के अभिधेयार्थ की चर्चा हो चुकी है। अँगरेजी के 'एसे' शब्द का अभिधेयार्थ है—अभीष्ट विषय को प्रस्तुत करने का प्रयत्न मात्र। चिंतनापूर्वक प्रस्तुत विषय की विवेचना और उसका प्रतिपादन से वे निबंध का संबंध नहीं जोड़ते। जानसन निबंध को मस्तिष्क की ढीली-ढाली उद्भावना और अव्यवस्थित तथा अपरिपक्व रचना के रूप में ग्रहण करते हैं††। अँगरेजी साहित्य के प्रथम निबंधकार

---

* The essay is a severe test of a writer, and has been described as the Ulysses, bow of literature.
—J. W. Marriott's Modern Essays and Sketches, Introduction, P. X.

† देखिए W. H. Hudson's 'An Introduction to the Study of Literature, P. 445'.

†† a loose sally of the mind, an irregular, undigested piece, not a regular and orderly composition.
—वही, पृ० ४४६

माने जानेवाले लार्ड बेकन भी निबंध को निक्षिप्त प्रणिधान (डिस्पर्स्ड मेडिटेशन) मानते हैं* । वे अपने निबंधों को संक्षिप्त टिप्पण के रूप में ग्रहण भी करते हैं जिनके प्रस्तुत करने में इच्छा की अपेक्षा महत्ता की वृत्ति का संनिवेश विशेष है† । पश्चिमी साहित्यकार मांटेन, क्रैब आदि सभी के विचार निबंध के विषय में ऐसे ही हैं । सभी इसे बुद्धि से उद्भृत अव्यवस्थित और अप्रांजल रचना के रूप में निर्धारित करते हैं । श्री क्रैब तो इसे अनिवार्यतः (नेसेसरिली) अगूढ़ रचना मानते हैं । इस प्रकार विदित होता है कि पश्चिमी समीक्षकों की दृष्टि में निबंध उतनी महत्त्वपूर्ण रचना नहीं है जितनी कि भारतीय दृष्टि से । इसका कारण वहाँ प्रस्तुत हुए निबंध के रूप ही हैं, इसका निर्देश हम कर चुके हैं । ध्यान में रखने की बात यह है कि वहाँ के साहित्यकार निबंध को चाहे जिस भी रूप में ग्रहण करें वे इसका संबंध बुद्धि वा प्रणिधान (माइंड और मेडिटेशन) से अवश्य जोड़ते हैं । पर उनके निबंधों में, जिस रूप में वे इन्हें ग्रहण करते हैं, बुद्धि का वा प्रणिधान का निखरा रूप नहीं दृष्टिगत होता । उनके निबंधों में चिंतनाओं की गँठी और सुव्यवस्थित शृङ्खला नहीं मिलती ।

अँगरेजी-साहित्य के आधुनिक काल में जो निबंध प्रस्तुत हो रहे हैं, जिन्हें वैयक्तिक निबंध (परसनल एसेज़) कहने की विशेष चाल है, उनका रूप भी प्रायशः ऐसा ही है । इन निबंधों की विशेषता मानी जाती है अभीष्ट विषय के प्रतिपादन की गौणता और किसी विशिष्ट विषय पर रचना करते समय निबंधकार की उमंग पर आश्रित अनेक विषयों पर दृष्टिपात की प्रधानता, जिसके अंतर्गत उससे संबद्ध अनेक व्यक्ति और वस्तु के विषय में अभिव्यक्ति का समावेश हो सकता है । इस प्रकार के निबंध के रूप-निर्धारण के कारण आज निबंध में विषयांतर (डाइग्रेसन) की स्थापना में भी विशिष्टता मानी जाती

---

* अपने 'एसे' नामक पुस्तक के समर्पण में लिखते हैं—

"The word essay is late, but the thing is ancient. For Seneca's Epistles to Lucilius, if one mark them well, are but essays, that is, dispersed meditations."

—वही, पृ० ४४४

† लार्ड बेकन अपने निबंधों के विषय में कहते हैं—

"brief notes set down rather significantly than anxiously. —वही, पृ० ४४६

है। अभिप्राय यह कि वहाँ के आधुनिक निबन्धकार भी निबन्ध में विषय की, जिसका संबंध बुद्धि वा विचारात्मकता से है, प्रधानता को विशेष महत्त्व नहीं देते। वे इसे अपनी उमंग की झोंक में रखते हैं। और ऐसा करते हुए निबंध में उनसे लगे अनेक वस्तु, व्यक्ति की चर्चा आने के कारण निबन्ध में विषयांतर का संनिवेश होता है। निबंध की रूप-रेखा इस प्रकार अंकित करने के कारण ही आज निबंध वहाँ हल्के साहित्य (लाइट लिटरेचर) के रूप में गृहीत होता है, जो अपने यहाँ के निबंध के रूप से बिल्कुल भिन्न है। हम निबन्ध को हल्के साहित्य के रूप में घोषित नहीं करते। निबंध को इस प्रकार हल्कापन दे देने के कारण इसे वे लोग कहानी, एकांकी नाटक तथा प्रगीत मुक्तक (लीरिक) के समकक्ष रखते हैं—संभवतः पाठक के पक्ष को दृष्टि में रखकर। लेखक का पक्ष तो अवश्य ही कुछ दुष्कर है, चाहे हम उपर्युक्त साहित्य के अंगों को किसी भी रूप में ग्रहण करें। वैयक्तिक निबंधों को प्रगीत मुक्तक की कोटि में रखने का प्रधान कारण यह है कि इन निबंधों में भाषा की काव्यात्मक वा भावात्मक शैली का होना भी आवश्यक माना गया है।

निबंध के रूप-दर्शन को लेकर दो और तत्त्वों की मीमांसा पश्चिम तथा पूरब में भी विशेष होती है; इन तत्त्वों का संबंध भी उसके अंतरंग से ही है। ये तत्त्व हैं हास्य-व्यंग्य-विनोद और व्यक्तित्व के। निबंध में हास्य-व्यंग्य-विनोद का संविधान आवश्यक है। निबंध में इनका समावेश साभिप्राय है—विशेषतः निबंध के भारतीय रूप की दृष्टि से। हम निबंध में बुद्धि की प्रधानता स्वीकार करते हैं और यह निश्चित है कि यदि आद्योपान्त विचारों का ही प्रतिपादन निबंध में किया जाय, बीच-बीच में श्रोता वा पाठक के बुद्धिश्रम को दूर करने पर निबंधकार की दृष्टि न जाय तो निबंध वस्तुतः एक रूक्ष रचना प्रतीत होगा। और ऐसी अवस्था में निबंधकार को भी विशेष श्रम का अनुभव होगा। अतः कर्त्ता तथा बोधक दोनों के बुद्धिश्रम के परिहार के हेतु निबंध में हास्य-व्यंग्य तथा विनोद की संस्थिति आवश्यक प्रतीत होती है। अँगरेजी-साहित्य में निबंध में इस तत्त्व की संस्थिति का संबंध चाहे निबंधकार के व्यक्तित्ववश अथवा परंपरा से निबंध में इसकी नियोजनावश जोड़ी जाय, पर जो लोग निबंध में विचारात्मकता का होना आवश्यक स्वीकार करते हैं उनकी दृष्टि में इस तत्त्व का उसमें होना अनिवार्य है। हिंदी के श्रेष्ठ निबंधकार श्रीबालकृष्ण भट्ट की धारणा भी इस विषय में ऐसी ही है—

रसिक पढ़नेवाले हास्य रस पर अधिक टूटते हैं। सच पूछो तो हास्य ही लेख का जीवन है। लेख पढ़ कुंद की कली समान दाँत न खिल

उठे तो वह लेख ही क्या—हमारे संस्कृत साहित्य में तो वक्रोक्ति ही काव्य का जीवन माना गया है "वक्रोक्तिः काव्यजीवनम्" हास्य में अवश्यमेव कुछ न कुछ वक्रोक्ति रहती ही है।*

निबंध में निबंधकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होनी आवश्यक है, इस विषय में सभी समीक्षक एक मत हैं। जिस प्रकार साहित्य और देश-काल का संबंध अविच्छेद्य माना जाता है और जिस साहित्य में देश-काल की झलक नहीं मिलती वह साहित्य की प्रगति से दूर फिंका साहित्य समझा जाता है, उसी प्रकार साहित्य और व्यक्तित्व का संबंध भी अपरिहार्य है। किसी साहित्य-कर्ता की कृति से हम उसके व्यक्तित्व को अलग नहीं कर सकते। यहाँ व्यक्तित्व से हमारा अभिप्राय कर्ता की रुचि, उसके अध्ययन-मनन-चिंतन तथा उसके जीवनगत प्रकृति वा स्वभाव से है। साहित्यकार इनसे प्रेरित होकर ही अपनी साहित्य-रचना के लिए विषय का चुनाव करता है, इनसे प्रभावित होकर ही उसका (विषय का) प्रतिपादन करता है और इनकी पूरी छाप उस पर लग जाती है। यदि व्यक्तित्व का तात्पर्य यही है तो साहित्य के सभी अंगों पर साहित्यकार के व्यक्तित्व की मुद्रा लगी मिलेगी, उसके साहित्य को तो हम उससे अलग कर ही नहीं सकते। जब बात ऐसी है तब साहित्य के एक अंग निबंध में कौन सुर्खाब का पर लगा है कि चारों ओर से इसमें व्यक्तित्व की निहिति के लिए चिल्लाहट सुनाई पड़ती है और वह किस ढंग का व्यक्तित्व है जो इसमें होना चाहिए ? यह एक समस्या है। निबंधकार की रुचि और प्रकृति तथा उसके अध्ययन-मनन-चिंतन से उसका निबंध शासित होता है, यह सत्य है। पर यह तो एक सामान्य तथ्य है। व्यक्तित्व के इन अवयवों में भी कुछ विशिष्ट अवयव होते हैं, जो अपनी प्रधानता के कारण स्पष्ट रूप धारण कर लेते हैं और किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में उसके अनेक अवयवों के होते हुए भी अपनी प्रधानता के कारण वे विशिष्ट अवयव ही उसके व्यक्तित्व की संज्ञा ग्रहण करते हैं। व्यक्तित्व के ये विशिष्ट अवयव, जो अपनी प्रधानता के कारण किसी व्यक्ति में साफ साफ झलकते हैं, दो प्रकार के हो सकते हैं। एक प्रकृत और दूसरे अर्जित। व्यक्तित्व के प्रकृत अवयव से तात्पर्य है किसी व्यक्ति में जन्मतः ही किसी विशेष रुचि आदि का प्राधान्य। यहाँ स्मरण रखने की बात यह है कि व्यक्तित्व के प्रकृत अवयव का संबंध प्रायः भावों वा मनोविकारों से होता है। किसी व्यक्ति में किसी विशिष्ट भाव का प्राधान्य होता है, जो प्रायः जन्मतः वा

* हिंदी प्रदीप, जिल्द २३, संख्या १।२।३। (सन् १९०० ई०)

प्रकृतितः ही देखा जाता है। व्यक्तित्व के अर्जित अवयव का अभिप्राय है किसी व्यक्ति द्वारा अध्ययन-मनन और चिंतन की उपलब्धिवश उसमें (व्यक्ति में) किसी विशिष्ट धारणा वा मान्यता की निहिति। इन्हीं दो अवयवों से निर्मित व्यक्तित्व की निहिति—उस व्यक्तित्व की निहिति जिसे हम सामान्य में भी विशेष कहते हैं—निबंधकार के निबंध में होती है। किसी निबंधकार के व्यक्तित्व में किसी विशेष भाव वा मनोविकार का प्राधान्य होता है और इस स्थिति में उसके निबन्ध में भी उस भाव वा मनोविकार की नियोजना अवश्य ही हो जाती है; उस भाव के उसके व्यक्तित्व में घुल-मिल जाने के कारण उसकी अभिव्यक्ति न हो सके यह असंभव है। वह अपनी रचना में ऐसे स्थलों की नियोजना अवश्य करेगा जो उसके व्यक्तित्व में स्थित प्रमुख भाव के चित्रण के लिए पूर्ण अवकाश देंगे। इसी प्रकार अध्ययन-मनन-चिंतन के कारण किसी निबंधकार की जो मान्यता वा दृष्टि निर्धारित हो चुकी है उसकी नियोजना भी उसके निबंध में अवश्य ही होगी, इसमें संदेह नहीं। वस्तुतः निबंध में व्यक्तित्व की निहिति का अर्थ यही होना चाहिए। निबंध में व्यक्तित्व की निहिति का अर्थ जो लोग अभीष्ट विषय से बार-बार दूर उछलकर निबंधकार के जीवन से संबद्ध घटना, वस्तु और व्यक्ति का स्मरण, कीर्तन और चित्रण मानते हैं उनकी दृष्टि फीकी मानी जा सकती है और उनकी मान्यता अगूढ़। अँगरेजी साहित्य में वैयक्तिक निबंध में व्यक्तित्व-चित्रण का अर्थ कुछ-कुछ इसी प्रकार का लिया जाता है।

निबंध में वैयक्तिक तत्त्व को लेकर एक प्रश्न और है। निबंध में व्यक्तित्व का चित्रण कैसे हो? विषयांतर करके अथवा विषय से लगकर? निबंधकार को इतनी सुविधा तो मिलनी ही चाहिए कि वह व्यक्तित्व के चित्रण के लिए यथोचित स्थान पर विषयांतर करे। पर, लंबा-चौड़ा विषयांतर करने का अधिकार संभवतः समीक्षक उसे न दे सकें। वस्तुतः इस कार्य के हेतु निबंध में यदि विषयांतर हो तो वह छोटा होना चाहिए और निबंधकार के लिए यह उचित है कि वह अपने इस कार्य को कर तुरत अभीष्ट विषय पर आ जाय।

निबंध में व्यक्तित्व की निहिति का एक दूसरा साधन उसकी शैली भी है। इस विषय में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, क्योंकि शैली और व्यक्तित्व के घनिष्ठ संबंध की चर्चा सभी पर विदित है।

निबंध के रूप के अंतरंग तथा बहिरंग-दर्शन की समाप्ति के पूर्व दो शब्द उसके रचना-कौशल पर भी कहने हैं। निबंध के आदि और अवसान में प्रभावात्मकता की निहिति, उसमें अभीष्ट विषय के प्रतिपादन की स्पष्टता और इस कार्य

की सिद्धि के लिए उसमें समुचित उद्धरण और उदाहरण की नियोजना की आवश्यकता पर सभी की दृष्टि जा सकती है। निबंध-रचना-कौशल के इन तत्त्वों की नियोजना निबंध में करते समय उसके रचयिता की दृष्टि इन्हें उसमें इस रूप से प्रतिष्ठित करने की होनी चाहिए कि इनके द्वारा रचना में बनावटीपन न आ जाय। अभिप्राय यह कि इनकी नियोजना मात्र के लिए उसकी दृष्टि इन पर न जानी चाहिए; और श्रेष्ठ निबंधकार वस्तुतः ऐसा करता भी नहीं है। इसकी चर्चा यहाँ इसलिए करनी पड़ी कि साहित्य का संबंध स्वाभाविकता से अति घनिष्ठ है। जिस साहित्य में बनावटीपन है उसकी साहित्यिकता में संदेह किया जा सकता है।

निबंध का यह आदर्श रूप-निर्धारण है। ऐसे निबंध साहित्य में कम मिलेंगे जिनमें ये सभी तत्त्व संनिविष्ट हों, और समुचित ढंग से संनिविष्ट हों। कुछ रचनाएँ ऐसी भी हो सकती हैं जिनमें निबंध के उपर्युक्त तत्त्वों में से एकाध की नियोजना न हुई हो। कुछ ऐसी रचनाएँ भी दृष्टिगत होती हैं जिनमें निबंध की ही भाँति काया का विस्तार भी लघु होता है, और उनमें अभीष्ट विषय का प्रतिपादन भी कुशलतापूर्वक किया जाता है, पर निबंध के अन्य तत्त्व नहीं मिलते। आज साहित्य में इस प्रकार की रचनाएँ भी प्रायः निबंध के नाम से अभिहित की जाती हैं। इन्हें निबंध की कोटि में रखा जाय अथवा नहीं ? यह तो सत्य है कि ऐसी रचनाएँ आदर्श निबंध की तुला पर नहीं तुल सकतीं। यदि इन्हें भी निबंध की कोटि में प्रतिष्ठित कर दिया जाय तो निश्चय ही निबंध का अपना सच्चा रूप-रंग कुछ फीका प्रतीत होगा। ऐसी स्थिति में इनके लिए एक अलग कोटि का निर्धारण ही श्रेयस्कर जान पड़ता है। प्रश्न है, इनकी कौन-सी कोटि हो और इन्हें नाम कौन-सा दिया जाय। कोटि की दृष्टि से इन्हें हम निबंध से नीची कोटि में ही रखेंगे, अर्थात् द्वितीय कोटि में; निबंध प्रथम कोटि की रचना होगी। अब, इन्हें क्या नाम दिया जाय, प्रश्न यह है। अँगरेजी में जिसे 'एसे' कहते हैं और हिंदी में 'निबंध' संस्कृत में उसे प्रायः 'लेख्य', 'निबंध' और 'प्रबंध' नाम देते हैं; इसकी चर्चा थोड़ी-बहुत हो चुकी है। इसी प्रकार अँगरेजी में जिसे 'कांपोजीशन' कहते हैं संस्कृत में उसे प्रायः 'संग्रथ' और 'रचना'* नाम से अभिहित करते हैं। निबंध से नीची वा द्वितीय कोटि की रचना को, जिसका वर्णन ऊपर हुआ है, हम 'कांपोजीशन', 'संग्रंथ' वा 'रचना' नाम से पुकार सकते हैं। पर इन नामों को हिंदी में ग्रहण करने में बड़ी कठिनाई है।

* संक्षिप्त वस्तु रचना। —साहित्यदर्पण, ४२२।

अँगरेजी का शब्द हम ग्रहण ही नहीं कर सकते। यदि ऐसा करें तो हमारे प्राचीन और शिष्ट साहित्यिक हमें अपना तुंड ऊँचा-ऊँचा कर-कर गाली देना आरंभ कर देंगे! संस्कृत का 'संग्रंथ' शब्द स्पष्ट बोध नहीं कराता। अब रहा 'रचना' शब्द। इसके ग्रहण में भी कठिनाई है, क्योंकि इसके द्वारा गद्य पद्यमयी सभी साहित्यिक कृतियों का बोध होता है। अतः उपर्युक्त प्रकार की रचना के लिए यह शब्द भी ग्राह्य नहीं। ये सभी कठिनाइयाँ दूर हो जायँ, यदि इस प्रकार की रचना के लिए 'लेख' शब्द का ग्रहण कर लिया जाय, क्योंकि कोई दूसरा प्रशस्त मार्ग नहीं दृष्टिगोचर होता। यद्यपि यह शब्द बड़ा व्यापक है और 'निबंध' 'प्रबंध' सभी प्रकार की रचनाओं के लिए सामान्यतः प्रयुक्त होता है तथापि भेदीकरण के लिए हम इसका प्रयोग कर सकते हैं। तो निबंध के समान ही विस्तार में छोटी, अभीष्ट विषय के प्रतिपादन से युक्त तथा विषय के प्रतिपादन में ग्रंथन-कौशल से परिपूर्ण रचना को हम 'लेख' शब्द द्वारा अभिहित करें, तो कोई हानि नहीं। इस प्रकार की रचना द्वितीय कोटि की मानी जायगी, क्योंकि आदर्श निबंध के अन्य तत्त्व इसमें सभवतः न मिल सकेंगे। यहाँ एक बात कहनी है—वह यह कि 'लेख' भी 'निबंध' की जाति की ही रचना समझी जानी चाहिए, यद्यपि उसकी कोटि निम्न अवश्य है। निबंध की व्यापकता के लिए ऐसा करना आवश्यक प्रतीत होता है। यदि ऐसा न किया जायगा तो साहित्य में निबंध की संख्या अँगुलियों पर गिनने योग्य ही होगी।

हिंदी-साहित्य के गद्य के क्षेत्र में 'प्रबंध' उस प्रकार की रचना को कहा जाता है जिस प्रकार की रचना को अँगरेजी में 'थीसिस' वा 'ट्रीटाइज' कहते हैं। यह बहुत विस्तृत रचना होती है, 'प्र' उपसर्ग 'विस्तार' वा सर्वतोभाव' का बोधक है ही। इसमें विषय का ही प्राधान्य होता है, जिसमें रचयिता प्रायः गवेषणापूर्ण तथ्यों का संनिवेश करता है। इस प्रकार विषय की प्रधानता मात्र तथा गवेषणात्मकता के कारण प्रबंध में नीरसता और रूक्षता आ सकती है, और प्रायः ऐसा देखा भी जाता है। विषय के प्रतिपादन की स्पष्टता, ग्रथन-कौशल आदि का समावेश इसमें भी होना आवश्यक माना जा सकता है। इन तत्त्वों से परिपूर्ण 'प्रबंध' की वस्तुतः अपनी अलग सत्ता है, और उसे इसी रूप में देखना चाहिए। निबंध से इसका संबंध जोड़ना उचित नहीं। इसका क्षेत्र ही अलग है।

निबंध को लेकर रूप और नाम की चर्चा हुई, अब भेद की चर्चा शेष है। विषय को दृष्टि-पथ में रख यदि निबंध के भेद किए जायँ तो उसके अनेक भेद हो सकते हैं, उतने भेद जितने विषय हैं। और, सच्चे तथा अच्छे निबंधकार

के हाथ में पड़कर किसी भी विषय पर सत् निबंध प्रस्तुत हो सकता है। पर ऐसी स्थिति में जैसे विषय की सीमा नहीं—वस्तुतः इस अनेक रूपात्मक जगत् में विषय निस्सीम हैं—वैसे ही निबंध के भेदों की भी सीमा न रहेगी। अभिप्राय यह कि इस प्रकार निबंधों का कोई सुविधाजनक विभाजन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। अभिव्यक्ति-शैली वा रचना प्रस्तुत करने की पद्धति पर यदि दृष्टि रखकर निबंधों के भेद निर्धारित किए जायँ तो सामान्यतः उसके पाँच भेद स्थापित किए जा सकते हैं—(१) विचारात्मक, (२) भावात्मक, (३) आत्मव्यंजक, (४) वर्णनात्मक और (५) कथात्मक। निबंध की इन अभिव्यक्ति-शैलियों में से किसी एक का ग्रहण निबंधकार की शिक्षा-दीक्षा, रुचि और उसके व्यक्तित्व पर निर्भर है। इन्हीं से शासित होकर ही वह कोई शैली ग्रहण कर निबंध-रचना करता है। विभिन्न शिक्षा-दीक्षा, रुचि और व्यक्तित्व से संपन्न निबंधकार 'साहित्य' विषय पर निबंध प्रस्तुत करते समय उपर्युक्त विभिन्न शैलियों का ग्रहण कर सकते हैं। 'साहित्य' पर निबंध प्रस्तुत करने के लिए कोई विचारात्मक, कोई भावात्मक, कोई आत्मव्यंजक, कोई वर्णनात्मक और कोई कथात्मक शैली का ग्रहण कर सकता है। और, यह सत्य है कि इस विषय पर उपर्युक्त पाँचों पद्धतियों द्वारा निबंध प्रस्तुत किया जा सकता है।

मानवस्थित बुद्धि और हृदय का—विचार और भाव का—उपयोग उसके जीवन के सभी क्षेत्रों में होता है। साहित्य-क्षेत्र में भी यह बात लागू है। वस्तुतः साहित्य बुद्धि और हृदय का ही व्यापार है, ऐसा व्यापार जिसमें ये दोनों—बुद्धि और हृदय—अन्योन्याश्रित और संमिश्रित हैं। हाँ, यह सत्य है कि साहित्य के अंगों में हृदय की ही प्रधानता है, उसके ऐसे अंग कम हैं जिनमें बुद्धि की प्रधानता हो। निबंध में बुद्धि की ही प्रधानता है, यह हम पर विदित है। पर, इसका तात्पर्य यह तो नहीं समझा जाता कि निबंध में हृदय का कोई उपयोग ही नहीं है। भावात्मक निबंधों में तो हृदय की प्रधानता वैसे ही स्वीकृत कर ली गई है जैसे विचारात्मक निबंधों में विचार वा बुद्धि की प्रधानता। हृदय का उपयोग भी इसमें होता है, पर गौणतः। अभिप्राय यह कि विचारात्मक और भावात्मक निबंधों में विचारों और भावों की प्रधानता रहती है, इनमें गौणतः भाव और विचार भी रहते ही हैं। इसकी चर्चा प्रायः होती है कि साहित्य हृदयप्रधान वस्तु है। पर उसकी हृदयप्रधान भूमि में बुद्धि की आवश्यक पतली-क्षीण धारा भी प्रवाहित ही रहती है। बात यह है कि बिना बुद्धि से शासित हृदय तो बावला कहा जायगा, जैसे बिना रीढ़ के शरीर निकम्मा। हम कहना यह चाहते हैं कि साहित्य के जो अंग बुद्धिप्रधान हैं उनकी तो कोई

बात नहीं, जो हृदयप्रधान हैं, उनमें भी बुद्धि अपेक्षित है। भावात्मक निबंधों में यह आवश्यक है कि उनमें भाव बुद्धि से शासित हों। इस प्रकार विचारात्मक और भावात्मक दोनों निबंधों में विचार-धारा की आवश्यकता लक्षित होती है। विचार-धारा की पीनता और क्षीणता इनमें अवश्य होगी।

विचारात्मक तथा भावात्मक निबंधों पर इस प्रकार विचार करने पर तो यह स्पष्ट: लक्षित होता है कि इनका विभाजन मानवस्थित बुद्धि और हृदय के आधार पर है। तो इन्हें भी शैली के आधार पर विभाजित क्यों माना जाय? इनके विभाजन का आधार बुद्धि और हृदय अवश्य है और यह ठोस आधार है। पर सुविधा के लिए शैली के आधार पर ही इनका विभाजन इसलिए किया गया है कि निबंधकार की शिक्षा-दीक्षा, रुचि और व्यक्तित्व के कारण एक ही विषय पर विचारात्मक निबंध भी प्रस्तुत किया जा सकता है और भावात्मक निबंध भी। 'काव्य' पर विचारात्मक निबंध भी मिलते हैं और भावात्मक निबंध भी। एक ही विषय पर दो प्रकार के निबंधों के प्रस्तुत होने का कारण स्पष्टतः तो निबंधकारों द्वारा गृहीत दो शैलियाँ ही हैं। बात यह है कि समग्र रूप से साहित्य भी किसी वस्तु को प्रस्तुत करने की शैली ही है, जिसमें उसकी (साहित्य की) अभिव्यक्ति की साधिका भाषा की श्रेष्ठ शक्तियों का विशेष हाथ होता है। फतेहपुर सीकरी पर लिखी रचना ऐतिहासिक प्रबंध भी हो सकती है और साहित्यिक निबंध भी। वस्तुतः प्रस्तुत करने की शैली के भेद के ही कारण कोई वस्तु साहित्यिक हो जाती है और कोई असाहित्यिक वा शास्त्रीय।

वर्गीकरण के आधार की दृष्टि से आत्मव्यंजक निबंधों के विषय में भी वही बात समझनी चाहिए जो विचारात्मक तथा भावात्मक निबंधों के लिए कही गई है। अर्थात् निबंधों में आत्मव्यंजकता की निहिति भी अभिव्यक्ति-शैली पर ही निर्भर है। इस प्रकार के निबंधों में निबंधकार की दृष्टि किसी तथ्य को स्पष्ट और प्रतिपादित करने की ओर तो होती है—निबंध में इसका होना तो आवश्यक माना ही गया है—साथ ही ऐसे निबंधों में निबंधकार की रुचि, प्रवृत्ति और उसके व्यक्तित्व की व्यंजना विशेष होती है—निबंधकार विषय को प्रतिपादित करने की ऐसी शैली ही ग्रहण करता है। श्रीप्रतापनारायण मिश्र के कुछ निबंध आत्मव्यंजक निबंध के अच्छे उदाहरण हैं।

वर्णनात्मक और कथात्मक निबंधों का संबंध स्पष्टतः रचना-शैली से है, इसमें संदेह नहीं। वर्णनात्मक निबंध में निबंधकार की वृत्ति वर्णन करते समय प्रायः हृदय की ओर जाती हुई विशेष लक्षित होती है। इस प्रकार के निबंध में हृदय वर्ण्य विषय में रमता चलता है। वर्णन और रमणीयता का

घनिष्ठ संबंध है भी। विचारात्मक निबंध में वृत्ति विषय के प्रतिपादन की ओर होती है। बुद्धि-व्यापार इसमें विशेष होता है। पर, विचार करने पर लक्षित होगा कि वर्णनात्मक निबंध में विचारात्मकता का अभाव वा निषेध नहीं रहता। इसमें भी विचारात्मकता होती है—प्रायः आरंभ में विषय की प्रस्थापना करते समय।

कथा साहित्य को व्यक्त करने की एक शैली है। कथात्मक निबंध में तथ्य के प्रतिपादन के लिए कथा का आधार मात्र लिया जाता है, जैसे विचारात्मक निबंध में उसके प्रतिपादन के लिए उदाहरण का। इस प्रकार हम देखते हैं कि कथात्मक निबंध भी तथ्य वा विचार से अलग नहीं किया जा सकता—निबंध का जो मूलभूत तत्त्व है।

निबंधों के भेद की मीमांसा करते समय हमारी दृष्टि इनमें विचारात्मकता की प्रधानता लक्षित कराने की ओर भी रही है। निबंध साहित्य का बुद्धि-प्रधान अंग है, यह हम निर्णीत कर चुके हैं। निबंधों में भावात्मकता की प्रधानता पर भी हमारी दृष्टि जाती है। पर वहाँ भी हम देखते हैं कि विचारात्मकता से भावात्मकता का कोई विरोध नहीं है। विचारात्मकता वहाँ भी विद्यमान है—चाहे अल्पतः ही सही। ऐसी स्थिति में यदि मानवस्थित बुद्धि और हृदय पर लक्ष्य करके निबंधों का भेद स्थापित किया जाय तो निबंध के दो ही प्रकार प्रतिष्ठित किए जा सकते हैं—विचारात्मक और भावात्मक। क्योंकि शैली के आधार पर निर्धारित निबंध के भेदों में भी तो विचार और भाव ही रहते हैं—किसी भेद में विचार की प्रधानता रहती है, किसी भेद में भाव की। और सूक्ष्मतः विचार किया जाय तो विदित होगा कि निबंध के भावप्रधान भेदों में भी विचार की आवश्यकता अपेक्षित है।

साहित्य शास्त्र और दर्शन से प्रभावित होता है, और साहित्य के अंग भी एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। ऐसी स्थिति में स्मरण रखने की बात यह है कि जो वस्तु जहाँ जाती है वह वहीं की होकर रह सकती है। दूसरे क्षेत्र से कोई वस्तु साहित्य के क्षेत्र में जायगी, तो उसे साहित्य के शासन में चलना और रहना होगा, वह उद्दंड होकर साहित्य पर अपना रोब गालिब नहीं कर सकती। और दूसरे क्षेत्र से आई वस्तुओं पर साहित्य भी यदि शासन नहीं कर सकता, यदि वह उन्हें अपने अनुकूल कर अपने रंग में रँग नहीं सकता, यदि वह उन्हें मनमानी करने देता है, तो यह समझ लेना चाहिए कि ऐसे साहित्य में कोई शक्ति नहीं है, ऐसा साहित्य नपुंसक है, ऐसा साहित्य साहित्य नहीं है। तात्पर्य यह कि शास्त्र और दर्शन को साहित्य में आकर साहित्य का ही होकर रहना

होगा, और साहित्य में भी इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह इन्हें साहित्य का बनाकर रख सके। साहित्य का एक अंग निबंध भी अन्य शास्त्र से प्रभावित है, विशेषतः तर्क और मीमांसा से। पर निबंध तर्क और मीमांसा नहीं है, इसमें उनकी प्रतिपादन-पद्धति का ही ग्रहण किया गया है, वह भी अपने ढंग से। अभिप्राय यह कि तर्क और मीमांसा से प्रेरणा ग्रहण कर निबंध ने उन्हें अपने में मिला लिया है, अपने अनुकूल बना लिया है। उसने इन्हें तर्क और मीमांसा-शास्त्र के रूप में नहीं, प्रत्युत साहित्य के रूप में ग्रहण किया है। यह विवेचना विचारात्मक निबंधों की दृष्टि से विशेष उपयुक्त प्रतीत होती है।

इसी प्रकार निबंध के कुछ भेद साहित्य के अन्य अंगों से भी प्रेरणा ग्रहण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। जैसे, भावात्मक तथा वर्णनात्मक निबंध काव्य से प्रभावित दृष्टिगत होते हैं और कथात्मक निबंध उपन्यास, कहानी तथा नाटक से। भावात्मक निबंधों में काव्यात्मकता तथा भावात्मक शैली और वर्णनात्मक निबंधों में वृत्ति का हृदय की ओर जाकर रमणीय वर्णन प्रस्तुत करना काव्य से ही आया हुआ जान पड़ता है। वर्णन का तत्त्व वस्तुतः काव्य का ही तत्त्व है। भावात्मक निबंधों में काव्य का रूप स्पष्टतः काव्य-क्षेत्र से आया हुआ जान पड़ता है।

यहाँ हमें यह भी कहना है कि गद्यकाव्य भी भावात्मक निबंध के अंतर्गत ही आता है। भावात्मक निबंध का यह छोटा रूप है। दोनों में कुछ भेद भी अवश्य है, पर उतना अधिक नहीं। इन दोनों प्रकार की रचनाओं को देखने से विदित होता है कि भावात्मक निबंध में रचयिता की दृष्टि विषय के प्रतिपादन पर रहती है और गद्यकाव्य में मन को रमाने पर। इसमें प्रतिपादन की निहिति नहीं लक्षित होती।

कथात्मक निबंधों में कथा-साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है।

बाह्यांतर दोनों रूपों पर दृष्टि रख कर विचार करने से विदित होता है कि निबंध और आलोचना में अनेक अंशों में साम्य है। दोनों के बाह्य रूप-रंग समान हैं। दोनों में रचयिता की दृष्टि अभीष्ट विषय के स्पष्टीकरण तथा प्रतिपादन की ओर होती है। निबंध के कुछ अन्य तत्त्व—विशेषतः हास्य-व्यंग्य और विनोद—भी श्रेष्ठ और शिष्ट आलोचना में देखे जाते हैं। व्यक्ति-तत्त्व भी यदा-कदा मिल ही जाता है। निष्कर्ष यह कि विचारात्मक निबंधों तथा आलोचना में विशेष साम्य जान पड़ता है। तो, क्या ये दोनों एक ही हैं? हाँ, शैली की दृष्टि से तो ये एक ही प्रतीत होते हैं। विशेषतः वह आलोचना तो निबंध के समान ही जान पड़ती है जो निबंधों के ही रूप में लिखी गई है। निबंध

की स्वतंत्र सत्ता की चर्चा हो चुकी है। पर, विषय की दृष्टि से ये दो हैं। निबंध के विषय साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक आदि अनेक हो सकते हैं, जिन्हें साहित्य के आवरण में रखा जाता है। पर, आलोचना का विषय एक ही है—केवल साहित्यिक। निबंध में साहित्य, धर्म, समाज, जीवन आदि अनेक की मीमांसा हो सकती है, पर आलोचना में केवल साहित्य की मीमांसा। इसमें भी जीवन, समाज, धर्म, दर्शन आदि आएँगे पर साहित्य की मीमांसा के—आलोचना के—सहायक होकर। अभिप्राय यह कि आलोचना का एक मात्र क्षेत्र—विषय की दृष्टि से—साहित्य है और निबंध का क्षेत्र अति व्यापक है। इस प्रकार निबंध और आलोचना एक ही जाति के स्थिर होते हैं, यद्यपि दोनों का कार्य भिन्न-भिन्न है।

निबंध को दृष्टि-पथ में रखते हुए विचारणीय वह विषय भी है जिसके द्वारा साहित्य साहित्यकार की ही वस्तु न रहकर साहित्यज्ञों—साहित्यिक लोक वा जनता—की भी वस्तु बनता है, जिसके द्वारा साहित्य की आनंदानुभूति साहित्यकार ही नहीं, प्रत्युत श्रोता, पाठक और दर्शक भी करता है। साहित्य की सार्थकता भी इसीमें है कि वह साहित्यकार से चलकर साहित्य के रसिकों को भी रसास्वादन कराए। साहित्य अरण्य-रोदन नहीं है। इसे अरण्य-रोदन समझने और समझानेवालों का युग अब लद चुका है। अभिप्राय यह कि साहित्य में प्रेषणीयता होनी चाहिए। प्रेषणशक्ति का अधारणकर्ता साहित्य संभवतः साहित्य न कहा जायगा और जिस साहित्य में जितनी अधिक प्रेषणीयता होती है वह उतना ही श्रेष्ठ कोटि का स्वीकृत किया जाता है। साहित्य की इस महत्त्वशील प्रेषणशक्ति ने तो उसके (साहित्य के) आधे—और अत्यन्त आवश्यक—अंग पर अधिकार ही जमा रखा है। साहित्य के बाह्यांग का, जिसे कला-पक्ष भी कह सकते हैं, संबंध इस प्रेषणशक्ति से ही है। इसे यों कहें कि साहित्य का बाह्यांग प्रेषण का साधन है। साहित्य के इस अंग की महत्ता पर किसी को संदेह नहीं होना चाहिए। इसकी महत्ता और आवश्यकता उसके अंतरंग से किसी प्रकार कम नहीं, जिसका संबंध भाव, अनुभूति आदि से है। कहना तो यह चाहिए कि अंतरंग की अपेक्षा बाह्यांग की महत्ता किन्हीं दृष्टियों से अधिक है। साहित्यकार लाख-लाख भाव, अनुभूति आदि को लेकर ही क्या करेगा यदि वह इन्हें समुचित रूप न दे सकेगा—साहित्य के बाह्यांग द्वारा साहित्य का अंतरंग (भाव, अनुभूति आदि) वा उसकी आत्मा का महत्त्व तो तभी न है जब वह साहित्य के शरीर के माध्यम से व्यक्त हो, बिना शरीर के आत्मा कहाँ टिकेगी। और साहित्य का शरीर उसका बाह्यांग—कलापक्ष—है।

इस प्रकार साहित्य के बाह्यांग का बड़ा महत्त्व स्थापित होता है। साहित्य अपने बाह्यांग को लेकर ही श्रोता, पाठक वा दर्शक के संमुख उपस्थित होता है और तत्पश्चात् अपनी आत्मा का प्रकाश उन्हें देता है। निष्कर्ष यह कि साहित्य बाह्यांग द्वारा ही श्रोता, पाठक वा दर्शक तक पहुँचने की शक्ति ग्रहण करता है। अर्थात् प्रेषण का साधन साहित्य का बाह्यांग ही है। साहित्य के बाह्यांग के निर्माण का मूल तत्त्व है शब्दमय भाषा। साहित्यकार में भाव, अनुभूति आदि की संस्थिति के पश्चात् इन्हें अभिव्यक्त करने के लिए भाषा की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। बिना भाषा के वह कुछ कर ही नहीं सकता। पर, साहित्य की सृष्टि के लिए केवल भाषा का होना ही अलम् नहीं है। भाषा की प्राप्ति के साथ ही साहित्यकार में उस शक्ति की भी अपेक्षा प्रतीत होती है, जिसके द्वारा वह वर्ण्य को इस ढंग से अभिव्यक्त करता है कि श्रोता, पाठक वा दर्शक उसके साहित्य से स्वतः—साहित्य के ग्रहण की इच्छा न रहने पर भी—प्रभावित होता है। साहित्यकार की इस शक्ति का संबंध शैली से है, जो (शैली) कथन की प्रणाली मात्र है। पर ऐसी प्रणाली जो श्रोता, पाठक वा दर्शक पर प्रभाव डालने में पूर्ण समर्थ होती है। प्रभाव डालने में समर्थ कथन-प्रणाली ही शैली की सीमा में आ सकती है, इस तथ्य पर ध्यान जाना आवश्यक है। किसी बात को टेढ़े-सीधे ढंग से तो सभी कह लेते हैं। कथन-प्रणाली में इसी विशिष्टता के कारण शैलीकार की श्रेणी में कम ही रचयिता आ पाते हैं। और, शैली के इस आदर्श के कारण शैलीकार की दृष्टि केवल भाषा पर ही नहीं रहती है, वह उसकी शक्तियों और रीतियों तथा उसके गुणों और अलंकारों तक भी जाती है। भाषा के इन सभी तत्त्वों के साहाय्य से वह अपनी शैली में प्रभावात्मकता की निहिति करता है। और, शैली के इसी आदर्श के कारण शैलीकार की दृष्टि शब्द, भाषा के चरमावयव वाक्य पर भी रहती है। वह कथन में प्रभाव लाने के लिए प्रसंगानुकूल वाक्यों के पदों की नियोजना में परिवर्तन करता है, उनकी गति में आरोह और अवरोह लाता है। भाषा में मुहावरेदानी तथा लोकोक्तियों आदि का संनिवेश प्रभाव डालने के लिए ही होता है। शैली के आदर्श को दृष्टि पथ में रखकर शैलीकार उसमें इन तत्त्वों की संस्थापना करता है। शैली के इन तत्त्वों का आगमन शैलीकार—जो साहित्यकार ही होता है—की शैली में उसके व्यक्तित्व से शासित होकर आते हैं। शैली और शैलीकार के व्यक्तित्व का घनिष्ठ संबंध है। शैलीकार की रुचि, प्रवृत्ति, शिक्षा-दीक्षा आदि उसकी शैली में अवश्यमेव प्रतिफलित होती दिखाई पड़ती है। स्मरण रखने की बात यह है कि शैली में शैलीकार का व्यक्तित्व साहित्य के

अंतरंग से भासित होता हुआ ही आएगा। इस प्रकार शैली का संबंध साहित्य के बाह्यांग से तो लगा दिखाई ही पड़ता है, उसके अंतरंग से भी वह जुड़ा लक्षित होता है।

साहित्य के एक अंग निबंध में भी शैली की अपेक्षा है और निबंध-रचना की सफलता उसमें निहित शैली की सफलता पर निर्भर है, क्योंकि प्रभावात्मकता की नियोजना तो निबंध में भी होनी ही चाहिए और साहित्य के इस तत्त्व का (प्रभावात्मकता का) संबंध शैली से ही है। निबंध के सभी भेदों में उल्लिखित शैली के सभी तत्त्वों की नियोजना निबंधकार यथाप्रसंग कर सकता है। पर इनकी नियोजना में निबंध के भेद के अनुकूल न्यूनाधिक्य अवश्य होगा। जैसे, शैली का अलंकार-पक्ष; जिसके अंतर्गत भाषा की शक्ति, रीति, गुण, अलंकार आदि सभी हम लेते हैं, विचारात्मक, आत्मव्यंजक तथा कथात्मक निबंधों में उतनी सुविधापूर्वक नहीं लाया जा सकता जितनी सुविधापूर्वक वर्णनात्मक तथा भावात्मक निबंधों में लाया जा सकता है। इसका कारण यह है कि निबंध के इन भेदों का संबंध काव्य-तत्त्व से विशेष है और भाषागत अलंकारों की नियोजना काव्य में ही सुगम है। प्रायः देखने में यह आता है कि निबंध के जिन भेदों में शैलीगत अलंकार-तत्त्व का समावेश विशेष होता है, उनमें व्यक्ति-तत्त्व की झलक कम मिल पाती है। और विचारात्मक तथा आत्मव्यंजक और कथात्मक निबंधों में, जिनमें भाषा के अलंकार-तत्त्व की नियोजना के लिए स्थान विरल मिलता है, व्यक्ति-तत्त्व की झलक स्पष्टतः लक्षित होती है। यहाँ व्यक्ति-तत्त्व से तात्पर्य निबंधगत व्यक्ति-तत्त्व से है, जिसका आभास भाषा शैली के माध्यम से निबंधों में प्राप्त होता है। वस्तुतः निबंधगत व्यक्ति-तत्त्व तथा भाषा-शैलीगत व्यक्ति-तत्त्व में किन्हीं अंशों में कुछ विशेष भेद नहीं जान पड़ता। निबंधगत व्यक्ति-तत्त्व भाषा-शैली द्वारा व्यक्त होकर शैलीगत व्यक्ति-तत्त्व का नाम धारण कर लेता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व से संबद्ध हास्य-व्यंग्य-विनोद उनकी भाषा-शैली द्वारा प्रकाशित होकर उनकी शैली के व्यक्ति-तत्त्व (अर्थात् हास्य-व्यंग्य-विनोद) की अभिधा धारण करता है। सच तो यह है कि निबंधकार के जिस व्यक्तित्व का प्रभाव उसके निबंध पर पड़ता है उसी व्यक्तित्व का प्रभाव उसकी भाषा-शैली पर भी। व्यक्तित्व एक ही है, स्थान वा क्षेत्र दो हैं, जिन पर उस (व्यक्तित्व) का प्रभाव पड़ता है।

२

आरंभ

हिंदी-साहित्य में निबंधों के निर्माण की अटूट परंपरा यद्यपि भारतेंदु-युग से चली तथापि इस (निबंध) की रचना का आरंभ उपर्युक्त युग के लगभग सौ वर्ष पूर्व ही हो गया था; और निबंध-रचना के आरंभकर्ता थे श्रीसदासुखलाल 'सुखसागर'* (सं० १८०३–१८८१), जिनका फारसी उपनाम 'नियाज'† था। हिंदी खड़ी बोली गद्य को शक्ति प्रदान करनेवालों में भी इनका विशेष हाथ था, यह सभी पर विदित है।

हिंदी में श्रीसदासुखलाल के विषय में जो अनुसंधान कार्य हुआ वह पूर्णतः लोगों के संमुख नहीं आ सका। उनकी दो-चार रचनाएँ ही सबके सामने आईं, यद्यपि अनुसंधानकर्ताओं का कथन है कि "इन्होंने···बहुत से लेख लिखे हैं।"†† उन लोगों ने यह भी कहा कि "हो सकेगा तो इनके लेखों का संग्रह पुस्तकाकार निकाला जायगा।" पर उन अनुसंधानकर्ताओं द्वारा यह कार्य न हुआ, और पता नहीं अब श्रीसदासुखलाल की उपर्युक्त सामग्री प्राप्त हो सकेगी अथवा नहीं।

---

* श्रीसदासुखलाल के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने 'सुखसागर' ग्रंथ की रचना की है। पर बात ऐसी नहीं है। वस्तुतः उनका उपनाम 'सुखसागर' था। 'सुखसागर' नाम का कोई साहित्यिक ग्रंथ हिंदी में नहीं मिलता। उनके संबंध में इस गड़बड़ी का कारण हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की नोटिस लेने और उसे समझने-बूझने में असावधानी जान पड़ती है।

† कुछ लोगों का कथन है कि श्रीसदासुखलाल का फारसी उपनाम 'निसार' था।

†† देखिए श्रीलाला भगवानदीन और श्रीरामदास गौड़ द्वारा संगृहीत 'हिंदी-भाषा-सार', पहला भाग, वक्तव्य, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५।

निबंध का प्रतिपाद्य है सुर और असुर का निर्णय। इस निर्णय के लिए निबंधकार 'योनि' वा जन्म का अवलंबन नहीं करना चाहता, प्रत्युत स्वभाव वा कर्म का आधार लेना चाहता है। उसकी धारणा यह है कि कोई व्यक्ति 'स्वभाव' (आदत) और 'कर्म' के कारण 'सुर' और 'असुर' अथवा 'ब्राह्मण' और 'चांडाल' होता है, जन्म वा 'योनि' से नहीं। इसकी सत्यता प्रमाणित करने के लिए उसने अनेक पौराणिक उदाहरण दिए हैं। जहाँ तक श्रीसदासुखलाल की इस मान्यता का संबंध है, वह कोई नवीनता लिए हुए नहीं प्रतीत होती। प्राचीन काल से ही हमारे समाज के विधायक वर्ण की व्यवस्था जन्म के आधार पर नहीं, कर्म के आधार पर देते आते थे।

'सुरासुर-निर्णय' विवेचनात्मक निबंध है। इसमें निबंधकार अपने पक्ष का प्रतिपादन अनेक उदाहरणों को संमुख रखकर करता है। इस कार्य में उसे सफलता भी मिली है। पाठक को यदि कुछ अस्पष्टता का आभास मिलता है तो केवल निबंधकार की भाषा के कारण, क्योंकि वह आज का हिंदी-गद्य नहीं है, प्रत्युत उस समय का है जब हिंदी गद्य शक्ति-संग्रह ही कर रहा था। निबंध की रचना-शैली का एक उदाहरण देखें—

प्रसिद्ध योनि है। सुर देवता, असुर दैत्य, संज्ञा है। जो कहिए असुर दैत्य हैं, इस बात में दूषण है। कंस दैत्य न था मनुष्य था, श्रीकृष्ण का मामा, उग्रसेन का बेटा था। तो इससे समझिए कि स्वभाव असुर है, मनुष्य होय कि अथवा देवता दैत्य होय।

उपर्युक्त निबंध की भाषा और उसकी अभिव्यक्ति-शैली प्राचीन है। उनमें पंडिताऊपन है। वस्तु को कहने के ढंग में भी यह बात मिलती है। वाक्य-योजना वैसी नहीं है, जैसी आज होती है। यथा—

जो यह कहो कि संस्कार करके ब्राह्मण और चांडाल होता है, तो व्यास जी नारायण के अवतार हैं धीमरी के पेट से जनमे हैं।

इस निबंध में ऐसे वाक्य जिनकी योजना में पंडिताऊपन है, अनेक मिलते हैं। वाक्य-योजना में पुनरुक्ति भी अनेक स्थलों पर मिलती है—

मनुष्य होय कि अथवा देवता दैत्य होय।

'कि' और 'अथवा' का अर्थ एक ही है। इसी प्रकार—

"राजा छत्री होय कि अथवा म्लेच्छ, तप नहीं किया होय और आप संत ज्ञानी सेवी होय, वह निःसंदेह मुक्तरूप है इसमें कोई संदेह नहीं।

'निःसंदेह' कहने के पश्चात् 'इसमें कोई संदेह नहीं' कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

वाक्य-संयोजकों को लोप करने की प्रवृत्ति श्रीसदासुखलाल में विशेष मिलती है। जैसे—

दुर्वासा ब्रह्मऋषि है, स्वभाव तमोगुणी है, उसे असुर जानना चाहिए।

प्रथम और द्वितीय वाक्य के मध्य 'परन्तु' वा 'पर' संयोजक का तथा द्वितीय और तृतीय वाक्य के मध्य 'अतः' वा 'इसलिए' संयोजक का लोप है।

'जय न पावता,' 'उसे कहा चाहिए,' 'लय हूजिए' 'बन आवै है,' 'बह-कावनेवाले,' 'ताईं' आदि प्राचीन तथा पंडिताऊ प्रयोग अनेक हैं। इस निबंध में 'निर्णय' का प्रयोग स्त्रीलिंग में है—

ब्राह्मण चांडाल की निर्णय भी नाम के लिए होती है।

फारसी का भी एकाध प्रयोग मिलता है। जैसे—

'लज्या खींची है।" 'लज्जा खींचना' फारसी का प्रयोग है।

३

निर्माण

हिंदी में निबंध-रचना का आरंभ श्रीसदासुखलाल द्वारा हुआ तो परंतु उसके निर्माण की अजस्र धारा बही भारतेंदु-युग से, जो वर्त्तमान युग तक प्रवाहित होती आ रही है। श्रीसदासुखलाल के समय तथा भारतेंदु-युग के बीच में कोई निबंधकार था अथवा नहीं, इसका पता अभी तक नहीं चला है। हिंदी-साहित्य की अभी पूरी खोज भी नहीं हो पाई है। इतने समय के बीच में और निबंधकार भी रहे होंगे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

आधुनिक हिंदी-साहित्य का आरंभ भारतेंदु-युग से स्वीकार किया जाता है और यह भी सत्य है कि निबंध-निर्माण की चलन प्रभूततः आधुनिक काल से ही आरंभ होती है। भारतेंदु-युग की समय-सीमा संवत् १६२४ वि० से संवत् १६६० वि० तक है।

हिंदी में निबंध-निर्माण के आरंभिक युग अर्थात् भारतेंदु-युग की विवेचना करते समय इस पर भी दृष्टि रखनी होगी कि उस युग में निबंध-निर्माण का सम्यक् कारण क्या है, क्योंकि इसके पूर्व से निबंध की अटूट परंपरा आती नहीं दिखाई पड़ती। भारतेंदु-युग तक आकर भारत में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ एकत्र हो गई थीं—सामाजिक तथा साहित्यिक दोनों दृष्टियों से—कि इस युग को हम समाज और साहित्य दोनों का पुनर्जागर्ति काल स्वीकार करने में कुछ भी हिचकिचाहट का अनुभव नहीं कर सकते। तद्युगीन समाज ही कुछ ऐसी गतियों में घूम रहा था कि साहित्य का उसके अनुकूल चलना अनिवार्य हो गया था। साहित्य समाज से अनुप्रेरित होकर चलता भी है। यह सत्य है कि साहित्य की अपनी भी कुछ प्रेरणा होती है, जिससे वह शासित रहता है, पर उस पर समाज की छाप विशेष रहती है। चाहे वह प्रत्यक्षतः रहे चाहे परोक्षतः। भारतेंदु-युगीन साहित्य में तत्कालीन समाज की छाप स्पष्ट है।

यह सत्य है कि अँगरेज प्रभुओं की नीति अपनी ही समृद्धि पर दृष्टि रख-कर चलती रही, पर इस कार्य की सिद्धि के लिए वे दूसरों की सुविधा पर भी यदाकदा दृष्टि रखते थे और इस प्रकार दूसरों को अपने पक्ष में कर; उन्हें दूषीविष दे; अंततः सारा मैदान अपने ही हाथों कर लेते थे। इनकी यह प्रवृत्ति भारत-आगमन के आरंभ से ही दिखाई पड़ती है। भारत को सभ्य बनाने के लिए (!) उन्होंने जो कुछ किया वा उसे जो कुछ सुविधाएँ दीं वह इसी नीति की प्रेरणावश। 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के शासन के प्रति असंतोष के कारण, जो असंतोष भारतीय राजनीति, धर्म, आचार-व्यवहार सभी के पक्ष को लेकर था, संवत् १९१४ (सन् १८५७) की क्रांति हुई और वह दबा भी दी गई। पर इस क्रांति में भारतीयों की उग्रता का अनुभव विदेशी शासन को भलीभाँति हुआ। अतः अनेक सुविधाएँ देकर अँगरेज प्रभु भारतीय जनता को शांत करना चाहते थे। 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के शासन के अंत होने और भारत का शासन इंगलैंड की सरकार के हाथों में जाने पर महारानी विक्टोरिया के 'घोषणापत्र' का, जो संवत् १९१५ (पहली नवंबर; सन् १८५८) में घोषित हुआ, मूल कारण यही था। इस 'घोषणापत्र' द्वारा महारानी विक्टोरिया ने अपने राज्य में सारी प्रजा के साथ समान बर्ताव करने, जाति, धर्म अथवा रंग के कारण किसी को किसी भी पद से वंचित न करने, और किसी भी धर्म के विषय में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया। संवत् १९१४ के आंदोलन में भारत की किन्हीं देशी रियासतों का भी प्रमुख हाथ था, अतः उनके साथ भी उदार नीति बरतने का वचन महारानी ने दिया और डैलहौज़ी साहब की नीति का परित्याग कर दिया गया।

अँगरेजी शासन की दृष्टि भारतीयों को राजनीति द्वारा ही विजित करने की ओर नहीं रही, वरन् सांस्कृतिक विजय की महत्त्वाकांक्षा से भी वह सदैव प्रेरित रहा। भारत में ईसाई धर्म के प्रचार को प्रोत्साहन देना इसका ज्वलंत प्रमाण है। इसके अतिरिक्त शिक्षा पर उनकी दृष्टि का विशेष रूप से जाना भी इसका प्रमाण है कि वे सांस्कृतिक दृष्टि से भारत पर अपनी विजय स्थापित करना चाहते थे, क्योंकि वे जानते थे कि इस विजय में स्थायित्व विशेष है। श्रीचार्ल्सवुड की रिपोर्ट (संवत् १९११) के अनुसार प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए बहुत-सी पाठशालाएँ स्थापित की गईं। सरकार की दृष्टि उच्च शिक्षा पर भी गई और उसने संवत् १९१४ में कलकत्ता, बंबई और मद्रास की प्रेसिडेंसियों में युनिवर्सिटियों की स्थापना की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संवत् १९१४ के आंदोलन के पश्चात् अँगरेजी शासन में उदारता का समावेश होने लगा। इस उदारता का क्या कारण था,

यह बात दूसरी है। इस उदारता के कारण पहले से जकड़ी हुई भारतीय जनता को अपनी आशा-अभिलाषाओं, अपने विचारों आदि के व्यक्त करने का अवसर मिला। अँगरेजी शिक्षा इसमें विशेष सहायक हुई। यह सत्य है कि भारतीयों के लिए अँगरेजी शिक्षा अंत में घातक सिद्ध हुई, पर अपने आरंभिक समय में इसने भारत की जनता को एक दूसरे देश के साहित्य, विज्ञान, समाज-नियम वा व्यवहार आदि से परिचित करा कर उन्हें एक नवीन देश के विचारों को प्रदान किया, जिसके द्वारा उनकी दृष्टि में व्यापकता और उदारता आई, वे किसी वस्तु को आगे रखने के लिए प्रगल्भ बने। इसके द्वारा उनकी सामाजिक तथा धार्मिक कट्टरता भी दूर हुई। इस कट्टरता को दूर करने में रेल, तार, अस्पताल आदि की स्थापना ने विशेष कार्य किया। हम यह नहीं कहते कि अँगरेजी शिक्षा के प्रचार के कारण उस समय की भारतीय जनता ने अपनी भारतीयता भुलवा दी थी, क्योंकि उस समय के सभी विशिष्ट पुरुषों में हम इसका प्रचुर परिमाण पाते हैं; इसके अतिरिक्त भारतीयता का भूल जाना सारी भारतीय जनता के लिए संभव भी नहीं था, कारण यह है कि अँगरेजी शिक्षा का ग्रहण उस समय तक प्रायः समाज के उच्च वर्ग के लोग ही कर पाए थे। पर नवीन शिक्षा में कुछ ऐसा आकर्षण अवश्य था जिसके कारण लोग इससे विशेष प्रभावित हुए। इसके द्वारा प्रभावित होने का प्रधान कारण यह है कि अँगरेजी साहित्य और विज्ञान में भी कुछ अपनापन है, उनमें इतनी शक्ति अवश्य है कि वे प्रभावित कर सकें।

अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा, उसके साहित्य, विज्ञान, तथा अँगरेजी चाल-ढाल, आचार-व्यवहार, रीति-नीति का प्रभाव पहले बंगाल प्रदेश पर विशेष पड़ा। वंग प्रदेश के निकट के पश्चिमी प्रदेशों बिहार तथा विशेषतः उत्तर प्रदेश में भी उपर्युक्त वस्तुओं का प्रभाव कुछ कम नहीं रहा। इसका कारण इस प्रदेश से अँगरेजों का संबंध तथा बंगालियों से भी इस प्रदेश के लोगों का संबंध है। और उत्तरोत्तर अँगरेजों का यह प्रभाव सारे भारतवर्ष में बढ़ता गया। भारतेंदु-युग के आरंभ में भारतीय समाज की यह अवस्था थी।

भारतेंदु युग के आरंभ में हिंदी-साहित्य के विषय में कहना यह है कि उस समय साहित्य के अंतर्गत विशेषतः काव्य पर ही साहित्यकारों की दृष्टि थी, और वह प्रायः प्राचीन और रूढ़िवादी ढर्रे पर चल रहा था। हिंदी-साहित्य में गद्य की ओर लोगों की दृष्टि कम थी। पर इसमें संदेह नहीं कि कुछ लोगों के हाथों में पड़ कर हिंदी-गद्य शक्ति-संग्रह अवश्य कर रहा था। और जब भारतेंदु-युग की स्थापना का आभास मिलने लगा तब उस समय के साहित्यकार गद्य पर

विशेष ध्यान देने लगे। सच तो यह है कि भारतेंदु-युग से हिंदी-साहित्य में गद्य का प्राधान्य आरंभ हुआ। अभिप्राय यह कि भारतेंदु-युग के आरंभ में हिंदी-भाषा कुछ-कुछ सशक्त हो चुकी थी, उसमें पूर्ण शक्ति नहीं आ पाई थी। उसमें पूर्ण शक्ति आई भारतेंदु-युग के साहित्यकारों द्वारा।

इसकी चर्चा हुई कि अँगरेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप भारतीय समाज का उच्च वर्ग अँगरेजी साहित्य के संपर्क में आया; और भारतेंदु-युग के प्रायः सभी साहित्यकार इसी वर्ग के थे। इन साहित्यकारों ने अँगरेजी साहित्य में एक प्रकार का गद्य-विधान देखा, जो निबंध की अभिधा ग्रहण करता है और इन लोगों ने यह भी देखा कि हिंदी-साहित्य में गद्य-विधान का यह रूप नहीं अथवा कम है और इन लोगों ने इसका भी अनुभव किया कि गद्य-विधान के इस रूप द्वारा अपनी बात को सीधे-सीधे दूसरों तक पहुँचाने में सुविधा है। अतः इनके द्वारा हिंदी में भी गद्य-विधान के इस रूप का ग्रहण भली प्रकार कर लिया गया। इसे तो हमने देख ही लिया है कि निबंध का आरंभ किसी न किसी रूप में इस युग के लगभग सौ वर्ष पूर्व ही हो गया था; पर भारतेंदु-युग के निबंधकारों ने जब निबंध-निर्माण का कार्य आरंभ किया तब उसमें अँगरेजी साहित्य की प्रेरणा विशेष अवश्य थी। यहाँ स्मरण रखने की बात यह भी है कि निबंध एक प्रकार का गद्य-विधान है और भारतेंदु-युग में साहित्यकारों की दृष्टि गद्य पर विशेष थी भी, जिसकी चर्चा हम ऊपर देख चुके हैं। हिंदी में निबंध-निर्माण के एक कारण की रूप-रेखा इस प्रकार है।

भारतेंदु-युग में निबंध-निर्माण का दूसरा कारण है उसके आरंभ में ही अनेक पत्र-पत्रिकाओं का आविर्भाव। जितनी पत्र-पत्रिकाएँ इस युग के आरंभ में निकलीं उन सभी की मूल प्रेरणा साहित्यिक थी और साहित्य की दृष्टि से सभी अनेकांगी थीं, अर्थात् उनमें साहित्य के सभी अंगों की रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। उनमें सामाजिक प्रभाव से उद्भूत रचनाएँ भी दृष्टिगत होती हैं। तो, उनमें साहित्य की अनेकांगिता के कारण निबंध का समावेश प्रायः रहता था। इसके अतिरिक्त साहित्य और समाज के विषय में विचारों की अभिव्यक्ति वा उनके आदान-प्रदान के लिए स्पष्ट, सीधा और सुविधाजनक विधान—निबंध का ही ग्रहण किया गया। ऐसी स्थिति में स्वतंत्र रूप से निबंधों की रचना तो दिखाई ही पड़ती है संपादकीय वा अग्रलेख के रूप में भी निबंधों का ग्रहण हुआ। भारतेंदु-युग में निबंध-निर्माण के उपर्युक्त दो कारण स्पष्टतः लक्षित होते हैं।

उपर्युक्त चर्चा से भारतेंदु-युग के आरम्भ की उन सामाजिक और साहित्यक परिस्थितियों का भी आभास मिलता है जिनके बीच इस युग के निबंध का श्रीगणेश हुआ। भारतेंदु-युग में सामाजिक और साहित्यिक चेतना भी बड़ी प्रबल और सजग थी। इस युग की सामाजिक चेतना से तात्पर्य है भारतीयता की चेतना—अपनेपन की चेतना, जो समाज, धर्म, राजनीति सभी को लेकर चलती थी। इस युग के जिन भारतीयों में अपनेपन की भावना न थी उनके प्रति लोगों की धारणा बड़ी निम्न कोटि की थी और उन पर कटु बौछारें किए बिना लोग नहीं रहते थे। इस युग की अपनेपन की चेतना के साथ ही यह भी स्मरण रखना है कि यह युग ऐसा था जिसमें राज-भक्ति की भावना भी लोगों में मिलती है। इसका कारण क्या है? इसका कारण है अँगरेजी सरकार द्वारा यदाकदा भारतीयों की सुविधा का खयाल रखना। इसके अतिरिक्त तब तक उपर्युक्त सरकार उतनी कटु नीति का व्यवहार नहीं करती थी जितनी कटु नीति का व्यवहार उसने बाद में किया। यहाँ इस बात पर भी ध्यान जाता है कि तब तक भारतीय जनता का उतना शोषण नहीं हुआ था, अँगरेजी सत्ता तब कायम ही हुई थी। उसमें आसूदगी थी। बाद में यह बात नहीं रही। इन्हीं कारणों से तद्युगीन जनता की दृष्टि राज-भक्ति पर भी थी। परंतु इन लोगों के हृदय में पैठ कर यदि देखा जाय तो विदित होगा कि भारतीयता की भावना का प्राबल्य इनमें विशेष था और राज-भक्ति की भावना में उतना जोर न था। भारतेंदु-युग के समाज के भारतीयपन की यह चेतना उस समय के निबंधों तथा अन्य प्रकार के साहित्यों में विद्यमान है। वह भावना भी उस समय के निबंधों तथा अन्य प्रकार के साहित्यों में विद्यमान है जो राज-भक्ति को लेकर थी।

भारतेंदु-युग की साहित्यिक चेतना की प्रबलता तथा सजगता पर भी हमने संकेत किया है, जिस की प्रेरणा के कारण उस समय हिंदी-साहित्य में नवीन-नवीन विषयों तथा शैलियों का ग्रहण किया गया। गद्य की भाषा के विषय में उस युग के साहित्यकारों के कार्य की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इन्हीं कारणोंवश उस युग में निबंध-रचना का प्राधान्य रहा। भारतेंदु-युग में ऐसे निबंधों की कमी नहीं है जो विशुद्ध साहित्यिक प्रेरणावश लिखे गए हों। उस युग के निबंधकारों ने साहित्यिक निबंध-रचना की सभी शैलियों का व्यवहार भी किया। भारतेंदु-युग के पश्चात् के युगों में निबंध-रचना की सभी शैलियों का ग्रहण धीरे-धीरे कम होता गया, उसके बाद निबंधकारों की दृष्टि इसकी सभी शैलियों के ग्रहण की ओर कम दिखाई पड़ती है। वर्तमान युग में

तो निबंध-रचना की केवल दो-एक शैलियाँ ही विशेषतः चलती हैं। अभिप्राय यह कि भारतेंदु-युग में साहित्यिक चेतना की प्रबलता और सजगता थी, निबंध को दृष्टि-पथ में रखकर जिसकी चर्चा अभी-अभी की गई है।

भारतेंदु-युग के साहित्यिक निबंधों के साथ हम उस युग के उन थोड़े से ऐतिहासिक और वैज्ञानिक निबंधों वा लेखों का भी स्मरण कर सकते हैं जो अँगरेजी विज्ञान के संपर्क में आने से लिखे गए हैं। उस युग में हम अँगरेजी विज्ञान से भी अवश्य प्रभावित हुए थे—जिस प्रकार अँगरेजी साहित्य से प्रभावित हुए थे।

इस प्रकार विदित हुआ कि भारतेंदु-युग की सामाजिक चेतना भी उस युग के निबंधों में उतरी और विशुद्ध साहित्यिक चेतना भी। भारतेंदु-युग के समाज के साथ साहित्य के चलने की विशेषता को दृष्टि में रखकर यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि उस युग के सामाजिक निबंधों वा लेखों में समाज की सभी बातें तो विद्यमान हैं ही, साहित्यिक निबंधों में भी वे संनिविष्ट हैं, पर यहाँ वे साहित्यिक ढंग से संनिविष्ट हैं, यही विशेषता है।

उपर्युक्त विवेचना द्वारा स्पष्टतः यह आभास मिलता है कि यदि हम चाहें तो भारतेंदु-युग के निबंधों को स्थूलतः दो श्रेणियों में रख सकते हैं। इनकी एक तो सामाजिक श्रेणी होगी और दूसरी साहित्यिक। साहित्यिक श्रेणी के साथ हम उन निबंधों को भी रख लेंगे जो ऐतिहासिक और वैज्ञानिक हैं। कारण यह कि इन तीनों प्रकार के निबंधों का संबंध विद्या से है।

———

४

सामाजिक निबंध

भारतेंदु-युग के सामाजिक निबंधों की मीमांसा के पूर्व 'सामाजिक' शब्द द्वारा गृहीत अर्थ पर संकेत कर देना उचित होगा। इस शब्द को हम कुछ व्यापक रूप में ग्रहण करना चाहते हैं। इससे हमारा अभिप्राय समाजगत सारी गतिविधियों से है, जिनके अंतर्गत समाज की समस्याएँ, धर्म, राजनीति, आचार-व्यवहार, रीति-नीति, समाज के गुण-दोष, गौरव और हीन भावना आदि सभी आते हैं। 'सामाजिक' शब्द द्वारा इस व्यापक अर्थ के लेने का आधार यह है कि वस्तुतः धर्म, राजनीति तथा उपर्युक्त सारी बातें समाज से ही संबद्ध हैं, ये सब समाज को ही लेकर चलती हैं। ऐसी स्थिति में भारतेंदु-युग के सामाजिक निबंधों पर विचार करते हुए हमारी दृष्टि उपर्युक्त विषयों को लेकर प्रस्तुत हुए निबंधों पर अवश्य होगी।

उपर्युक्त विषयों को दृष्टि-पथ में रखकर भारतेंदु-युग में प्रस्तुत हुए निबंधों की मूल प्रेरणाओं पर भी हमारी दृष्टि जाती है। उस युग की प्रमुख मूल प्रेरणा, जिस पर सभी साहित्यकारों की दृष्टि थी, भारत के प्राचीन गौरव की भावना है। उस युग में इस भावना की चेतनता का भी कारण था। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतेंदु-युग में भारतीयता तथा विदेशीयता का काफी संघर्ष रहा। वस्तुतः यह वह युग था जब भारतवासी तथा अँगरेज भलीभाँति एक दूसरे से परिचित होने की भूमिका में थे। भारतवासियों को अँगरेजों की सारी जीवन-चर्या तो नहीं भी मालूम हो सकती थी, परंतु अँगरेज भारतवासियों के जीवन से पूर्णतः अभिज्ञ हो गए थे वा हो रहे थे। यहाँ यह भी स्मरण रखना है कि भारतीय तथा अँगरेजी सभ्यता और संस्कृति दो भिन्न वस्तुएँ हैं। ऐसा होते हुए भी अँगरेजी शासन भारतीयों पर सांस्कृतिक विजय की महत्त्वाकांक्षावश अपनी सभ्यता और संस्कृति को भारतीयों पर लादने की फिराक में सदा रहता था। इस ओर उन्होंने कार्य करना भी

आरंभ कर दिया था। ईसाई धर्म के प्रचार को प्रोत्साहन देना, अँगरेजी भाषा तथा साहित्य का पठन-पाठन आवश्यक ठहराना तथा ऐसे ही और कार्य इसके प्रमाण हैं। नई शिक्षा-दीक्षा, सभ्यता-संस्कृति की चकाचौंध से भ्रमित कुछ भारतवासी भी विलायती बाबू बन गए थे और कुछ बनने के प्रयत्न में थे। परंतु ऐसे लोगों की संख्या अति न्यून थी। अभिप्राय यह कि भारतेंदु-युग में कुछ परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हो गईं थीं जो भारतीयता को बार-बार धक्का दे रही थीं। भारत के प्राचीन तथा तत्कालीन गौरव को ध्यान में रखनेवाले और उस पर गर्व करनेवाले भारतेंदु-युग के प्रायः सभी निबंधकार इस धक्के को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। इन लोगों ने अपनी रचनाओं में प्राचीन काल से चली आती हुई भारतीय परंपरा और उसके गौरव का दर्शन उन लोगों को कराया जो विदेशीपन में गर्क थे और उन लोगों को भी इसका दर्शन कराया जा उस ओर लपक रहे थे। इस कार्य को करते हुए इनकी प्रवृत्ति द्विमुखी दिखाई पड़ती है। ये लोग उन लोगों पर कड़े व्यंग्य कसते थे जो विदेशीपन में आकंठ मग्न थे और उन लोगों को भारतीय गौरव को दिखा कर सचेत करते थे और उस ओर लपकने से रोकते थे जो अगाड़ी-पिछाड़ी छुड़ा कर विदेशीयता की ओर भाग रहे थे वा भागना चाहते थे। ऐसी स्थिति में उस युग के निबंधकारों को—विशेषतः सामाजिक विषयों पर लिखते हुए—सुधार और उद्बोधन का कार्य करना पड़ता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेंदु-युग के सामाजिक निबंधों की एक मूल प्रेरणा भारतीय गौरव है, जो उस युग के इस प्रकार के सभी निबंधकारों में मिलती है। भारतेंदु-युग में यह प्रेरणा देश-भक्ति का एक अंग थी।

भारत के प्राचीन गौरव की भावना को लेकर ही उस समय कुछ संस्थाएँ स्थापित हुईं, जिनमें स्वामी दयानंद द्वारा स्थापित—संवत् १९३२ में—'आर्य-समाज' सर्वप्रमुख है। समय को दृष्टि में रखकर विचार करने से विदित होता है कि 'आर्यसमाज' उस युग की पूर्ण आदर्शवादी संस्था थी। यह जीवन के सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक सभी पक्षों को लेकर चलती थी। तात्पर्य यह कि यह जीवन और समाज में सर्वांगीण आदर्श स्थापित करना चाहती थी, जिस आदर्श का मूलाधार था वेद। यह बात अवश्य है कि इस मूलाधार के प्रतिपादन में स्वामी जी की कुछ अपनी दृष्टि थी, जिसके कारण 'आर्यसमाज' में कुछ सांप्रदायिकता आ गई। पर, भारतीय जनता में आत्मगौरव की भावना भरने में इस आदर्शवादी संस्था ने जितना काम किया है उतना और किसी संस्था ने नहीं किया। हम कहना यह चाहते हैं कि भारतेंदु-युग में

भारत के प्राचीन गौरव की मूल प्रेरणा को जगाने और उसके प्रसार करने में 'आर्यसमाज' का विशेष हाथ था।

अपने गौरवपूर्ण अतीत और वर्तमान में अपनी सशक्तता तथा सामर्थ्य पर विश्वास के कारण भारतेंदु-युग में भारतीय जनता में अधिकार प्राप्ति की भावना भी प्रबल थी। कुछ विज्ञों का कथन है कि अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा के कारण इस भावना का उदय हुआ था। इनका कथन भी सत्य हो सकता है। परंतु इस माँग की भावना में भारतीयों का शासक द्वारा दबाया जाना ही प्रधान कारण है। सच तो यह है कि उस समय तक भारतीयों में अपने भले-बुरे की पूरी पहचान आ गई थी। अब वे लकीर के फकीर नहीं बन सकते थे। भले-बुरे की पहचान में उनकी दृष्टि भारतीयता तथा विदेशीयता दोनों पर थी। अपने यहाँ की बुरी वस्तु पर भी उनकी दृष्टि जाती थी और वे इससे बचना चाहते थे। अभिप्राय यह कि रूढ़िवादिता अब बहुत कुछ दूर हो रही थी। उनसे तो यह वस्तु दूर हो ही चुकी थी जो साहित्य के क्षेत्र में काम कर रहे थे। भारतेंदु-युग के प्रायः सभी निबंधकारों में भले-बुरे की पहचान की और अधिकार प्राप्ति की भावनाएँ मिलती हैं। उनके सामाजिक निबंध इसके प्रमाण हैं।

कहा जाता है कि उपर्युक्त भावना के कारण ही संवत् १९४२ में श्री ए० ओ० ह्यूम और श्री विलियम वैडरबर्न द्वारा 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना हुई थी। यह तो सत्य है कि आगे चलकर कांग्रेस ने यही रुख अख्तियार किया। पर इसके संस्थापकों के हृदय में यह भावना थी अथवा नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कहने की आवश्यकता नहीं कि संस्थाओं की संस्थापना में अँगरेजी सरकार द्वारा प्रोत्साहन देने का लक्ष्य होता था, भारतीयों के हृदय की बात जानकर तदनुकूल नीति निर्धारित करने का। अँगरेज जाति के व्यक्तियों द्वारा कांग्रेस की स्थापना का यही मर्म जान पड़ता है। इसके मूल की बात चाहे जैसी भी हो परंतु यह सत्य है कि कांग्रेस क्रमशः भारतीयों के हृदय में जागरण की भावना भरने में पूर्ण सफल रही है।

भारतेंदु-युग के सामाजिक निबंधों में ये दो मूल प्रेरणाएँ सर्वत्र और स्पष्टतः लक्षित होती हैं। द्वितीय प्रेरणा के कारण ही भारतेंदु-युग में भारतीयों की अनेक माँगें अँगरेजी सरकार से हुई थीं, सरकार ने अपनी सुविधा पर दृष्टि रखकर जिनमें से कुछ माँगें पूरी भी की थीं। इनमें से स्थानीय स्वायत्तशासन सर्वप्रधान है, जो लार्ड रिपन के समय में मिला था। शासन संबंधी अन्य परिवर्तनों पर भी उस युग के निबंधकारों की दृष्टि थी। जैसे वंग-विच्छेद पर। उनके निबंधों में इसकी प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः चर्चा मिलती है। इसके अति-

रिक्त उस युग के आधिदैविक कष्टों पर भी लोगों की दृष्टि गई थी। भारतेंदु-युग की अवधि में लगभग पाँच अकाल पड़े थे। प्लेग का प्रकोप भी दो-तीन बार हुआ था। उस युग के निबंधकारों ने इनकी चर्चा भी की है।

भारतीय जीवन के धार्मिक तथा सामाजिक गुण-दोषों पर भी तद्युगीन निबंधकारों की दृष्टि स्पष्टतः लक्षित होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेंदु-युग के निबंध उस युग का पूरा प्रतिनिधित्व करते हैं। वस्तुतः समाज और साहित्य का संबंध जैसा भारतेंदु-युग के साहित्यकारों ने स्थापित किया वैसा अन्य युगों में दुर्लभ है।

सामाजिक निबंधों को दृष्टि-पथ में रखकर भारतेंदु-युग के निबंधकारों पर विचार करने से उनकी स्थूलतः दो श्रेणियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। एक श्रेणी में तो वे निबंधकार आएँगे जो प्रसिद्ध हैं और जिनकी रचनाएँ भी इस विषय पर अधिक हैं। दूसरी श्रेणी में वे आएँगे जो इस क्षेत्र में न उतने प्रसिद्ध ही हैं और न उनकी रचनाएँ ही अधिक हैं। प्रथम श्रेणी में आनेवाले निबंधकार हैं—भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र, श्रीप्रतापनारायण मिश्र, श्रीबालकृष्ण भट्ट और श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'। द्वितीय श्रेणी में ये निबंधकार आते हैं—लाला श्रीनिवासदास, श्रीराधाचरण गोस्वामी, श्रीमोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्रीकाशीनाथ खत्री और श्रीचंद्रभूषण चातुर्वैद्य। अंतिम श्रेणी के निबंधकारों के विषय में यहाँ दो बातें कह देनी आवश्यक हैं। एक तो यह कि यद्यपि इनकी रचनाएँ बहुत ही थोड़ी मिलती हैं तथापि इन्हें निबंधकारों के अंतर्गत रखना पड़ रहा है। ऐसा करने का भी कारण है, वह यह कि उस युग में हिंदी-निबंध-रचना का विशेष प्राधान्य न था, इसकी परंपरा आरंभ ही हुई थी, ऐसी स्थिति में दो-चार निबंध रचनेवालों को भी निबंधकार की श्रेणी में रख लेना अनुचित नहीं प्रतीत होता। वस्तुतः किसी साहित्य के आरंभिक युग में थोड़ी रचना करनेवालों को भी कम महत्त्व नहीं दिया जा सकता। उनका सब से बड़ा महत्त्व तो यही है कि वे किसी रचना विशेष की ओर अग्रसर हुए। लाला श्रीनिवासदास और श्रीकाशीनाथ खत्री भारतेंदु-युग के ऐसे ही निबंधकार हैं। दूसरी बात भारतेंदु-युग के निबंधकारों के विषय में यह कहनी है कि उस समय कुछ निबंधकार ऐसे थे जो पत्रकार वा पत्र-संपादक भी थे और वे अपनी रचनाएँ प्रायः बिना नाम के अपने पत्र में प्रकाशित करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य लोगों की रचनाएँ भी पत्रों में प्रायः बिना नाम के छाप दी जाती थीं। इस स्थिति में उनकी रचनाओं के विषय में कोई निर्णय करना दुःसाध्य है। फिर भी शैली, पदावली आदि के द्वारा निर्णय में सहायता मिलती है। श्रीराधाचरण

गोस्वामी और श्रीमोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ऐसे ही निबंधकार हैं। उस युग के साहित्यिक निबंधकारों तथा उनके निबंधों के विषय में भी इन दोनों बातों का स्मरण रखना आवश्यक है।

द्वितीय कोटि के निबंधकारों में लाला श्रीनिवासदास का 'भरतखंड की स्मृद्धि'* नामक निबंध बड़ा महत्त्वपूर्ण है, जिसमें भारत के प्राचीन गौरव की चर्चा यहाँ की विद्या, शिल्प, कला, व्यापार आदि को दृष्टि-पथ में रखकर की गई है। भारत की समृद्धि से विदेशीय लोगों ने कितना लाभ उठाया, भारत ने उन्हें क्या-क्या सिखाया, इसका वर्णन किया गया है। इस वर्णन के पश्चात् निबंधकार की दृष्टि तुरत ही भारत की वर्तमान अवस्था पर जाती है और वह भारत को बड़ी ही दीन-हीन अवस्था में पाता है। निबंध के अंत में इस अवस्था से उद्धार पाने के लिए निबंधकार ने उद्बोधन भी दिया है।

लाला श्रीनिवासदास के निबंधों को देखने से विदित होता है कि वे बहुपठ व्यक्ति थे। उपर्युक्त निबंध में उन्होंने देशी और विदेशी इतिहास से अनेक उदाहरण दिए हैं —कहीं-कहीं सन्-संवत् तक भी। निबंध में इनकी यह प्रवृत्ति सर्वत्र लक्षित होती है। इनके निबंधों में अँगरेज जाति वा उनके साहित्य से भी अनेक दृष्टांत लिए हुए मिलते हैं। जैसे—'सदाचरण†' नामक निबंध में। अभिप्राय यह कि इन निबंधों द्वारा इनकी योग्यता का पूर्ण परिचय मिलता है। सामाजिक निबंधकारों में बहुपठता की दृष्टि से जो स्थान लाला श्रीनिवासदास का है वही स्थान साहित्यिक निबंधकारों में श्री हरिश्चंद्र उपाध्याय का।

श्रीराधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेंदु' नामक मासिक पत्रिका संवत् १८६० (सन् १७६३) में वृंदावन से निकाली थी। इनके निबंध प्रायः इसी पत्रिका में मिलते हैं, जो विशेषतः सामाजिकता को ही लेकर चले हैं। इनके निबंधों को देखने से विदित होता है कि उनका विषय भारतेंदु-युगीन देश तथा काल है। साहित्यिक निबंध इनके कम हैं।

भारतेंदु-युग के सामाजिक निबंधों की मूल प्रेरणाओं की चर्चा करते हुए इसका निर्देश किया गया है कि उस युग में रूढ़िवादिता पर कम लोगों की दृष्टि थी, पर साथ ही अपनी परंपरा पर भी किसी को अश्रद्धा न थी। अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा में विशेष रूप से पले उस समय के कुछ लोग रूढ़िवादिता को बड़ी हेय दृष्टि से देखते थे और उसे तोड़ना एक फैशन समझते थे। कहना न होगा

---

* श्री हरिश्चंद्रचंद्रिका, खंड १, संख्या ६, संवत् १६३१

† भारतेंदु, पुस्तक १, अंक ५, संवत् १६४०

कि ऐसे लोगों तथा अँगरेजी बाबुओं में कुछ विशेष अंतर न था—कम से कम विचारों की दृष्टि से। इन लोगों में से कुछ लोग ऐसे थे जो उस समय थियोसोफिकल सोसायटी से विशेष प्रभावित हुए थे। इस सोसायटी का प्रभाव भारत के उच्च वर्ग के लोगों पर ही दृष्टिगत होता है। इसी प्रकार ब्रह्मसमाज का प्रभाव भी उस समय अच्छा था। वह बंगाल के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में भी अपने हाथ-पैर फैला रहा था। श्रीराधाचरण गोस्वामी पर भी इस समाज का प्रभाव पड़ा था और उन्होंने इसके पक्ष में कुछ निबंध भी लिखे थे, जो 'हिंदू बांधव' में मिलते हैं।

श्रीराधाचरण गोस्वामी के निबंध और लेख बड़े मनोरंजक तथा प्रौढ़ होते थे। इस दृष्टि से वे उस समय के प्रतिनिधि निबंधकारों की श्रेणी में बिठाए जा सकते हैं।

श्रीमोहनलाल विष्णुलाल पंड्या भी 'हरिश्चंद्रचंद्रिका और मोहनचंद्रिका' के संपादक थे, अतः इनके निबंध प्रायः इस पत्रिका में मिलते हैं। इनके निबंध भी सामाजिक हैं। जैसे, 'हम लोगों की वृद्धि किस रीति से होगी, 'बंधुत्व किसे कहते हैं,' 'खुशामद' आदि। ये सभी निबंध उपर्युक्त पत्रिका में प्रकाशित हैं।

श्रीकाशीनाथ खत्री भी प्रधानतः सामाजिक निबंधकार के रूप में ही हमारे संमुख आते हैं। इनके निबंधों का विषय भी तद्युगीन समाज ही है। जैसे, विधवा, स्वदेशप्रेम आदि।

श्रीचंद्रभूषण चातुर्वेद्य के निबंध, जिनकी संख्या अधिक है और जो समाज को लेकर लिखे गए हैं, 'नागरीनीरद' साप्ताहिक पत्र में प्रकाशित हैं। ये समाज के सभी अंगों को दृष्टि में रखकर चलते थे। पर्व, त्योहार, धर्म, कर्तव्यपालन, स्त्री-महत्त्व, जातिभेद आदि अनेक सामाजिक विषयों पर इनके निबंध मिलते हैं। इनके कुछ निबंध मनोविकारों पर भी हैं, जैसे—क्षमा, उपकार, छल आदि; पर इनका प्रधान विषय समाज ही है। इनके निबंधों को देखने से विदित होता है कि ये पढ़े-लिखे अच्छे पंडित थे—संस्कृत के; और भारतीय दृष्टि से ही सारी बातों पर विचार किया करते थे। इनके जो निबंध मनोविकारों पर हैं उनका प्रतिपादन भी इन्होंने प्रायः धार्मिक दृष्टि से किया है, शुद्ध मनोविकार की दृष्टि से नहीं।

भारतेंदु युग के प्रसिद्ध और प्रतिनिधि निबंधकारों से हम परिचित हैं। समाज से संबद्ध कोई भी ऐसा विषय नहीं है जिस पर इनकी दृष्टि न गई हो। समाज की तत्कालीन समस्याएँ, उसके गुण-दोष, राजनीति, धर्म, पर्व-त्योहार आदि सभी इनकी दृष्टि-सीमा के अंतर्गत दिखाई पड़ते हैं। इस युग के प्रसिद्ध

और प्रतिनिधि निबंधकारों पर विचार करते हुए इस पर भी दृष्टि रखनी होगी कि इन निबंधकारों का जितना महत्त्वपूर्ण स्थान सामाजिक निबंधों के क्षेत्र में है उतना ही साहित्यिक निबंधों के क्षेत्र में भी। कहना तो यह चाहिए कि इस क्षेत्र में—अर्थात् साहित्यिक क्षेत्र में—ये और भी चमकते हुए प्रतीत होते हैं। साथ ही इस पर भी ध्यान रखना होगा कि परिस्थितिवश इन निबंधकारों को समाज और साहित्य का पूर्ण सामंजस्य करके चलना पड़ता था। बिना ऐसा किए वे एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते थे। हम तो यह भी कहना चाहते हैं कि उस युग के ये निबंधकार समाज सुधारक के रूप में भी हमारे संमुख आते हैं; और वास्तव में ये इस कार्य में सक्रिय भाग लेते थे। उपर्युक्त सभी निबंधकार ऐसे थे। ऐसी स्थिति में सामाजिक विषय को लेकर ये विशुद्ध सामाजिक निबंध तो प्रस्तुत करते ही थे इनके साहित्यिक निबंधों में भी सामाजिकता का प्रभूत पुट रहता था—प्रायः हास्य और व्यंग्य की शैली में। बात यह है कि ये समाज और जीवन को साहित्य से पृथक् नहीं कर सकते थे। कहना यह है कि उपर्युक्त निबंधकारों में से कुछ के सामाजिक निबंध कम मिलते हैं और तत्कालीन समाज के सभी विषयों को भी लेकर कम मिलते हैं, पर इसका तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि इनकी दृष्टि संपूर्णतः समाज पर नहीं थी। समाज के कुछ विषयों पर तो ये अपनी राय विशुद्ध सामाजिक निबंधों में व्यक्त करते थे और कुछ विषयों पर एक भिन्न और मनोरंजक पद्धति द्वारा साहित्यिक निबंधों में।

भारतेंदु-युग के प्रतिनिधि और प्रसिद्ध निबंधकारों में सर्वप्रथम भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र का नाम आता है। साहित्य के क्षेत्र में जिस प्रकार इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा थी उसी प्रकार सामाजिक सभी विषयों पर भी ये दृष्टि रखते थे। उनके जीवनवृत्त जाननेवालों पर यह प्रकट है कि उनका एक पक्ष समाजसुधारक का भी है। राजनीति के क्षेत्र में भी वे कितने निर्भीक थे, यह किसी से छिपा नहीं है। उनकी राजनीतिक क्षेत्र की निर्भीकता के समान ही सामाजिक क्षेत्र की निर्भीकता भी सराहनीय है। जीवन और समाज में किसी वस्तु की ग्राह्यता के प्रश्न का हल वे उसकी प्राचीनता वा नवीनता को दृष्टि-पथ में रखकर नहीं करते थे, प्रत्युत उसकी उपयुक्तता तथा उसके द्वारा कल्याण को दृष्टि में रखकर इस (ग्राह्यता) का निर्णय करते थे। हम इस पर संकेत कर चुके हैं कि यह युग रूढ़िवादिता का आग्रह लेकर नहीं चलता था। ऐसी स्थिति में भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र उन सभी विषयों के विरुद्ध अपनी आवाज उठाते थे जो समाज और जीवन के लिए अहितकर होते थे। ऐसा करते हुए न उन्हें समाज का डर होता था और न सरकार का। इस प्रकार अपने देश, समाज और जीवन

के हित-साधन के लिए निर्भीकता का समावेश भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के सभी सामाजिक निबंधों में मिलता है। उदाहरणस्वरूप उनका "अंगरेजों से हिंदुस्तानियों का जी क्यों नहीं मिलता ?"* शीर्षक लेख देखा जा सकता है, जिसमें जी न मिलने के सत्य कारणों का स्पष्टतः उल्लेख हुआ है। इसका उल्लेख करते हुए भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने निर्भीकतापूर्वक हिंदुओं और अँगरेजों में एक दूसरे के प्रति सत्य धारणाओं की चर्चा की है। उन्होंने कहा है कि अँगरेज हिंदुओं की मूर्ति-पूजा से असंतुष्ट हैं और हिंदू अँगरेजों द्वारा गोवध से; हिंदू अँगरेजों को अपवित्र, विदेशी, क्रूर आदि समझते हैं और अँगरेज हिंदुओं को पराजित, मूर्ख, अंधकार में पड़े हुए, अपने हाथ का खिलौना आदि। दोनों पक्षों से उन्होंने ऐसी ही और बातें भी उपर्युक्त निबंध में कही हैं। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने अँगरेजों के कुछ दोषों का निर्देश किया है, जिनके कारण जी मिलने की जगह फटा जा रहा है। इसी प्रकार हिंदुओं के दोषों का भी निर्देश किया गया है। अँगरेजों का एक दोष, जिससे स्वयं भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र भी क्षुब्ध प्रतीत होते हैं, है हिंदू मजिस्ट्रेट को अँगरेज को दंड देने का अधिकार न मिलना और अँगरेज मजिस्ट्रेट को ऐसा करने का अधिकार मिलना। उन्होंने इसे "केवल पक्षपात" कहा है। कहना न होगा कि लार्ड रिपन के समय में उनके सभा के कानूनी सदस्य श्री इलबर्ट द्वारा संवत् १९४० में इलबर्ट बिल का पेश होना भारतीयों की इसी भावना का परिणाम है। इस बिल का लक्ष्य था भारतीय मजिस्ट्रेटों और जजों को किसी गोरे अभियुक्त का मुकदमा करने का अधिकार देना। वस्तुतः इस बिल द्वारा जाब्ता फौजदारी सब लोगों के लिए समान बनाने का उद्देश्य था। अँगरेजों द्वारा इस बिल के विरोध और भारतीयों द्वारा इसके समर्थन को लेकर जो वाग्युद्ध हुआ वह इतिहास प्रसिद्ध है। अंत में सरकार ने इस बिल को वापस ले लिया। परंतु भारतीय मजिस्ट्रेटों को जूरी की सहायता से अँगरेज अभियुक्तों का मुकदमा करने का अधिकार दे दिया गया।

जी न मिलने में दोनों जातियों के दोषों की चर्चा करते हुए भी लेख के अंत में भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने "मुक्तकंठ" से कहा है कि जब तक अँगरेजों को भारतीयों से प्रेम न होगा, जब तक वे उन्हें (भारतीयों को) आदर की दृष्टि से न देखेंगे और जब तक वे अपनी विजेता की भावना तथा स्वार्थपरता

---

* हरिश्चंद्रचंद्रिका, खंड २, संख्या ३, दिसंबर, सन् १८७४ ई०

न छोड़ेंगे तब तक जी नहीं मिल सकता। इस निबंध द्वारा भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के राजनीतिक विचारों की कुछ झलक मिल गई होगी।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र का साहित्यिक के अतिरिक्त समाज-सुधारक का भी एक रूप है, इस पर संकेत हो चुका है। इस रूप का प्रभाव उनके साहित्य पर भी पड़ा है। स्त्री-शिक्षा का प्रचार, तथा स्त्रियों को अन्य प्रकार की सुविधाएँ देना, बाल-विवाह का विरोध, विधवा-विवाह का समर्थन और प्रचार आदि कुछ ऐसी समस्याएँ थीं जिनका भारतेंदु-युग में बड़ा प्राधान्य था। इनके हल की ओर भी लोगों की दृष्टि थी। इन विषयों को लेकर भारतेंदु-युग के सभी निबंधकारों ने कुछ न कुछ निबंध लिखे हैं। स्त्रियों की समस्याओं को लेकर भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र द्वारा 'बालाबोधिनी' पत्रिका का निकालना सभी पर प्रकट है। स्त्रियों को ही दृष्टि में रखकर उन्होंने 'भ्रूणहत्या'* नामक एक लेख लिखा था, जिसमें भारतीय जनता से पुनर्विवाह करने का निवेदन किया गया है—विशेषतः बाल-विधवा का। बाल-विधवा के विवाह का समर्थन व्यावहारिक पक्ष से करते हुए उन्होंने कहा है कि इंद्रिय-निग्रह दुःसाध्य है, अतः ऐसा होना (भ्रूणहत्या) स्वाभाविक है। इंद्रिय-निग्रह की दुःसाध्यता पर संस्कृत श्लोकों के अनेक उद्धरण भी उन्होंने दिए हैं। लेख में अनेक उदाहरण भी हैं—अपने पक्ष के समर्थन के लिए। भ्रूणहत्या को असाधारण पाप सिद्ध कर भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने भारतीय जनता से पुनर्विवाह के लिए—विशेषतः बाल-विधवा का—निवेदन किया है। इसमें यह भी कहा गया है कि ऐसी संततियों का आदर भारत में प्राचीन काल से होता आ रहा है जैसी संततियों को हम पापकर्म का परिणाम मान कर मार डालते वा मार डालना चाहते हैं। निबंध में ऐसा न करने पर हिंदुओं का मुसलमान हो जाने की आशंका का भी निर्देश है। इसमें सरकार से भी भ्रूणहत्या को उसी प्रकार रोकने का निवेदन किया गया है जिस प्रकार उसने सती-प्रथा को रोका है।

भारतेंदु-युग में प्रचलित भारत के प्राचीन गौरव की मूल प्रेरणा का उल्लेख हो चुका है। भारतेंदु श्री हरिश्चंद्र द्वारा लिखित 'ईशू खृष्ट और ईश कृष्ण'※ लेख इसी भावना से परिपूर्ण है। इसका मूल विषय है—

भारत भुजबल लहि जग रच्छित।
भारत सिच्छा लहि जग सिच्छित।

---

* वही, खंड २, संख्या ६, मार्च, सन् १८७५ ई०

※ वही, खंड ६, संख्या ७, जनवरी, सन् १८७६ ई०

भारतेंदु-युग के दूसरे प्रसिद्ध और प्रतिनिधि सामाजिक निबंधकार हैं श्रीप्रतापनारायण मिश्र। उस युग के साहित्यकारों की दृष्टि से श्रीप्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के प्रतिनिधि स्वीकार किए जाते हैं। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के स्वर्गारोहण पर उनके विषय में लिखते हुए घोषित किया गया था—

"अब इस चंद्र (भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र) के अस्त होने पर उनके उद्भट लेख की बची बचाई कणिका यदि कहीं बच रही है तो कानपुर निवासी ब्राह्मण संपादक के लेख में देखी जाती है।"* वस्तुतः जहाँ तक निबंध का संबंध है वहाँ तक विचार, विषय, शैली आदि सभी दृष्टियों से श्रीप्रतापनारायण मिश्र और भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र में कोई विशेष अंतर नहीं प्रतीत होता। हाँ, दोनों निबंध-कारों के व्यक्तित्व में कुछ न कुछ भिन्नता के कारण इनकी अलग-अलग विशेषताएँ अवश्य हैं। परंतु यह सत्य है कि ये दोनों निबंधकार एक ही युग में विद्यमान थे, अतः युग की मूल प्रेरणाओं का प्रभाव दोनों पर समान है। श्रीप्रतापनारायण मिश्र के सामाजिक निबंधों द्वारा भारतेंदु-युगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी परिस्थितियों तथा उनके संबंध में श्रीप्रतापनारायण मिश्र के विचारों—जो तद्‌युगीन मूल प्रेरणाओं से प्रभावित थे—का पूर्ण परिचय मिल जाता है। उस युग की प्रमुख संस्थाओं, जैसे, कांग्रेस और आर्यसमाज की चर्चा भी उन्होंने की है। कहना न होगा कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र का कोई भी ऐसा सामाजिक निबंध नहीं है जिससे भारतीयता तथा देशहितैषिता की स्पष्ट ध्वनि न निकलती हो। यहाँ इसका भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि तद्‌युगीन भारतीय अवनति के मूल में विदेशी-शासन की ध्वनि उनके उपर्युक्त विषयों से संबद्ध सभी निबंधों में पाई जाती है। और, श्रीप्रतापनारायण मिश्र की उक्त विषय में इस धारणा पर किसी को संदेह भी नहीं हो सकता।

उस युग के सरकारी शासन के विषय में उनकी धारणा 'इनकमटैक्स' शीर्षक निबंध में व्यक्त हुई है, जिसमें उन्होंने बताया है कि देशवासियों में आय की कमी है। किसान रात-दिन परिश्रम करके भी पेट भर भोजन नहीं पाते। रोजगारियों का सारा रोजगार ठप पड़ा हुआ है, क्योंकि सरकार ने सारा रोजगार अपने हाथ में कर लिया है। जो पढ़े-लिखे हैं उनकी भी यही हालत है, वे बेकार हैं, मारे-मारे फिरते हैं। एक जगह खाली होने पर सत्रह टूट पड़ते हैं। नौकरी कर लेने पर भी खर्च भर नहीं अँटता, कर्ज लेना पड़ता है। ऐसी अवस्था में भी हमारे ऊपर इनकमटैक्स लगाया जाता है

* हिंदी-प्रदीप, जिल्द ८, संख्या ५, सं० १९४१ वि०।

अंत में श्रीप्रतापनारायण मिश्र कहते हैं—.........हमारा यह सिद्धांत सत्य होने में किसी को कुछ संदेह न होगा कि जितना दरिद्र मुसलमानों के सात सौ वर्ष के प्रचंड शासन द्वारा न फैला था, उतना, वरंच उससे अत्यधिक, इस नीतिमय राज्य में विस्तृत है।*

टैक्स को लेकर श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी 'नागरी नीरद' में अनेक लेख लिखे हैं।

कांग्रेस के प्रति इनकी असीम श्रद्धा थी। प्रयाग और मद्रास कांग्रेस में कानपुर के प्रतिनिधि होकर भी गए थे। कांग्रेस के विषय में इनके विचार इस प्रकार के थे—कांग्रेस साक्षात् दुर्गाजी का रूप है, क्योंकि वह देशहितैषी देव प्रकृति के लोगों की स्नेह शक्ति से आविर्भूत हुई है।† भारतवर्ष के लिए स्वामी दयानंद सरस्वती के बलिदान की भी इन्होंने प्रशंसा की है।

स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि और इनकी विशिष्टता, इनके व्यापार की उन्नति तथा इनके प्रचार पर भारतेंदु-युग की भी दृष्टि थी। इस प्रकार आज का स्वदेशी-आंदोलन कोई नवीन आंदोलन नहीं कहा जा सकता। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने इस विषय में बहुत कुछ लिखा है। 'देशी कपड़ा'‡ शीर्षक निबंध में श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने कहा है कि देशी कपड़ा विदेशी कपड़े की अपेक्षा कहीं अधिक सस्ता और टिकाऊ होता है। विदेशी कपड़े की अपेक्षा यह फैंसी भी होता है। ऐसी अवस्था में भी हम विलायती कपड़े पर टूटते हैं, जो दुःख की बात है। इससे हमें विदित होता है कि स्वदेशी वस्तुओं से श्रीप्रतापनारायण मिश्र को अधिक अनुराग था।

स्वदेश के व्यापार की उन्नति पर भी श्रीप्रतापनारायण मिश्र की दृष्टि है। इसी कारण वे प्रभूत द्रव्य व्यय करके सिविल सर्विस के लिए विलायत-यात्रा का निषेध करते हुए दिखाई पड़ते हैं। वे चाहते हैं कि जितना पैसा लगाकर विलायत जाया जाता है उतना पैसा यदि अपने देश में रहकर व्यापार में लगाया जाय तो देश का पैसा देश में ही रह जाय, यद्यपि वे इसे स्वीकार करते हैं कि विदेशी शासन होने के कारण देश का पैसा किसी न किसी प्रकार बाहर अवश्य जायगा। साथ ही वे नौकरी का भी विरोध नहीं करते। 'विलायत यात्रा'⸸ शीर्षक निबंध में, जिसमें उन्होंने इन बातों का निर्देश किया है, वे यह भी कहते हैं कि लोग प्राचीन ग्रंथों से भारतीयों की विदेश-यात्रा के अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते

---

* श्रीप्रतापनारायण मिश्रकृत निबंध-नवनीत, पृ० ७७

† वही, पृ० ८१। ‡ वही, पृ० ७९। ⸸ वही, पृ० ११२।

हैं; परंतु उनकी दृष्टि इस पर नहीं जाती कि वे लोग वहाँ जाकर अपनी सभ्यता की छाप लगा देते थे, और आज यह अवस्था है कि हम वहाँ जाकर विलायती-पन में पूर्ण रूप से गर्क होकर आते हैं—पूरे ईसाई बनकर आते हैं। इस प्रकार हम देखते यह हैं कि निबंधकार की दृष्टि अपनेपन पर सर्वत्र है, वह भारतीयता को कहीं भी नहीं छोड़ना चाहता।

इसका निर्देश हो चुका है कि भारतीयों पर सांस्कृतिक विजय की महत्त्वा-कांक्षावश अँगरेजों ने जितने कार्य किए उनमें ईसाई धर्म के प्रचार को प्रोत्साहन देना प्रधान है। आज तो भारतीय सर्वतोभावेन जाग्रत् हैं, परंतु आरंभ में इस धर्म के प्रचार के लिए अनेक मीठी छुरियों का प्रयोग किया गया था। ईसाइयों का धार्मिक आक्रमण विशेषतः बालकों और निम्न वर्ग की हिंदू स्त्रियों पर होता था। वे इन्हें अनेक प्रकार के प्रलोभनों द्वारा आत्मसात् करने का प्रयत्न करते थे। बालकों को तो वे खिलौनों, मिठाइयों आदि द्वारा फुसलाते थे और स्त्रियों को उनके सामने काल्पनिक सुख-स्वर्ग खड़ा करके। श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने 'दबी हुई आग'* शीर्षक निबंध में ईसाइयों की इन करतूतों से भारतीयों को आगाह किया है। इसमें उन्होंने कहा है कि इन लोगों ने मिशन स्कूल खोल रखा है, जिसमें ये बालकों को बाइबिल वा ईसाई धर्म की शिक्षा देते हैं। हमारे देवी-देवताओं की भी ये पूरी निंदा करते हैं। निबंधकार ने हिंदू-मुसलमानों से अपने स्कूल खोलने का निवेदन किया है, जिनमें समुचित शिक्षा दी जा सके। कहना न होगा कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र का इस प्रकार का निवेदन धार्मिक क्षेत्र में भी भारतीयता की छाप का द्योतक है।

धर्म-भावना से प्रेरित होकर श्री प्रतापनारायण मिश्र ने अनेक निबंध लिखे हैं। पर्व-त्योहारों पर भी अनेक निबंध हैं, जिनका संबंध धर्म-भावना से ही है। इस प्रकार के निबंधो में 'होली है'†, 'गंगा जी'‡, 'गोरक्षा'††, 'धरतीमाता'¹ प्रधान हैं। होली पर भी निबंध लिखते समय निबंधकार की दृष्टि देश-दशा पर है। इसमें कहा गया है कि बीसवीं सदी के अभागे हिंदुस्तानियों के लिए कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवा आदि किसी में कुछ तत्त्व नहीं है। अनेक आडंबर के साथ हम देश-हित के गाने गाते हैं परंतु स्वदेशी वस्तुओं से हमें प्रेम नहीं है। 'गंगाजी' शीर्षक निबंध में प्राचीन तथा वर्तमान भारत में गंगा के महत्त्व की चर्चा की गई है। इस निबंध द्वारा श्रीप्रतापनारायण मिश्र का गंगा के प्रति

---

* वही, पृ० १३०। † वही, पृ० ९२। ‡ वही, पृ० ११८।
†† वही, पृ० १२२। १ वही, पृ० १२४।

अतीव भक्ति का ज्ञान होता है। 'गोरक्षा' शीर्षक निबंध में गोमाता की महत्ता बताकर इनकी रक्षा की अपील की गई है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अनेक युगों से गोमाता पर संकट पड़ता आ रहा है। भारतेंदु-युग में भी यह था। निबंधकार ने इसकी चर्चा अपने निबंध में की है। निबंधकार का कथन है कि गोरक्षा की ओर तो लोगों की दृष्टि थोड़ी-बहुत गई है, परंतु धरतीमाता की ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। धरती पर उगे वृक्षों की रक्षा, उनकी वृद्धि आदि ही धरती की पूजा है और हम देखते हैं कि सरकार हमारे जंगलों को काटती चली जा रही है। जंगल का काटना उस समय रेल-तार के प्रसार के लिए अवश्य जारी था। निबंधकार ने भारतीय जनता से कहा है कि वह सरकार से जंगल न काटने का अनुरोध करे। इस निबंध में यह भी कहा गया है कि इस समय सबसे दुखी हमारे किसान ही हैं।

भारतेंदु-युग जागरण-युग है, इसका निर्देश किया जा चुका है। इस युग में जिस प्रकार लोगों की दृष्टि जीवन और समाज के अनेक पक्षों की उन्नति और उसके सुधार की ओर गई उसी प्रकार नारी की सामाजिक और बौद्धिक उन्नति और स्वतंत्रता की ओर भी। और, इस ओर दृष्टि पुरुषों की ही गई। वे ही इन्हें उन्मुक्त परिस्थिति में ले जाने के अभिलाषी थे। इसका कारण था प्राचीन भारत में नारी की सामाजिक और बौद्धिक उन्नति और स्वतंत्रता पर दृष्टि तथा अँगरेजों के संपर्क के कारण उनके यहाँ नारी की अवस्था से प्रेरणा। इसका सबसे प्रधान कारण तो यह था कि तत्कालीन पुरुषों ने इसका अनुभव किया कि वस्तुतः नारी हीनावस्था में पड़ी है। यहाँ स्मरण रखने की बात यह है कि उस समय नारी-स्वातंत्र्य का आंदोलन पुरुषों द्वारा ही उठाया गया, नारियों द्वारा नहीं, जैसा कि आज किया जाता है। जो देवियाँ आज उन्नत और स्वतंत्र होकर पुरुषों को जंतु की अभिधा देने की कृपा करती हैं उनकी दृष्टि भारतेंदु-युगीन इस तथ्य पर टिकनी चाहिए। श्रीप्रतापनारायण मिश्र की नारी पर अटूट श्रद्धा है। उनकी दृष्टि उसकी अवनति पर भी गई है और उसे स्वतंत्र तथा उन्नत करने पर भी। उनकी धारणा है कि सनातनधर्म, सत्कर्म, कुलाचार, सुव्यवहार, धार्मिक पर्व, त्योहार, व्रत आदि पर श्रद्धा केवल स्त्रियों में ही विशेष देखी जाती है, पुरुषों में कम। 'स्वतंत्र'* शीर्षक निबंध में श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने इन विषयों की अच्छी चर्चा की है। 'पतिव्रता'† शीर्षक निबंध में उन्होंने कहा है कि पतिव्रता देवियों की संख्या आज बहुत ही कम मिलेगी। इसका कारण वे स्त्री-शिक्षा का अभाव मानते हैं। उनका कथन है कि स्त्रियाँ पढ़ी

* वही, पृ० ६५। † वही, पृ० ८८।

भी हैं तो मेमों से, वे पातिव्रत की शिक्षा क्या देंगी ? दूसरा कारण वे यह बताते हैं कि इन्हें प्रायः भद्दी पुस्तकें पढ़ने को मिलती हैं। इस विषय में उनका यह भी कथन है कि पुरुषों के लिए सभा, अखबार, पुस्तक आदि की सुविधाएँ हैं, और स्त्रियों के लिए नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र की श्रद्धा नारी के प्रति अटूट है और वे उसकी सामाजिक और बौद्धिक उन्नति के अभिलाषी हैं।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र बाल-विवाह का निषेध करते हैं, 'बाल्यविवाह विषयक एक भोज'* से यह स्पष्ट है। 'स्वतंत्र'† शीर्षक निबंध में उन्होंने अँगरेजी-पन में ढले बाबुओं की अच्छी मरम्मत की है। इसमें उन्होंने कहा है कि यद्यपि ये बाबू लोग अपने को पूर्ण स्वतंत्र समझते हैं तथापि न ये शरीर से स्वतंत्र हैं, न अपने घर से, न समाज से और न उन अँगरेजों से, जिनकी सेवा के लिए ये दिन-रात उनका मुँह ताका करते हैं। इनका कहीं भी मान नहीं है। सर्वत्र इनकी छीछालेदर है। भारतेंदु-युग में विलायतीपन में ढले बाबुओं पर जो व्यंग्य कसे जाते थे, उनके विषय में समाज में जो धारणा थी, उनका अच्छा उल्लेख उपर्युक्त निबंध में है।

भारतेंदु-युग के तीसरे प्रसिद्ध और प्रतिनिधि सामाजिक निबंधकार हैं श्रीबालकृष्ण भट्ट। भारतेंदु-युगीन सामाजिक मूल प्रेरणाओं से ये भी उसी प्रकार प्रभावित हैं जिस प्रकार इनकी श्रेणी के अन्य निबंधकार। श्रीबालकृष्ण भट्ट के विषय में विशेष रूप से कहना यह है कि भारतीयता को लेकर इनकी प्रवृत्ति बड़ी जागरूक थी। प्रवृत्ति की जागरूकता से तात्पर्य है नवीन तथा प्राचीन के ग्रहण के लिए नीर-क्षीर-विवेकिनी शक्ति का पूर्ण अवलंबन; झोंक या तरंग में आकर उन्हें सहसा ग्राह्य न मान लेना। भारतेंदु-युग के अन्य निबंध-कारों में से इस प्रवृत्ति की स्थिति कम में ही मिलती है। अन्य निबंधकारों में कुछ सामाजिक अग्रगामिता का जोश दिखाई पड़ता है, जिसमें अपने-पराए और भले-बुरे की पहचान कुछ कम मात्रा में रहती है। श्रीबालकृष्ण भट्ट में यह जोश नहीं है. उनमें अपनेपन को लेकर स्थैर्य है। और, इस स्थैर्य का आधार है भारत के प्राचीन आर्यत्व और ब्राह्मणत्व पर पूर्ण आस्था, हिंदुत्व और सनातनधर्म पर पूर्ण विश्वास। भारतीयता के ये ही तत्त्व उनके निबंधों के आधार हैं। अपने पूर्वजों के उदाहरणों से उनके निबंध भरे पड़े हैं। ब्राह्मणत्व की गौरवशाली धारणा उनके हृदय में स्थित है और इसी कारण ब्राह्मणों की

---

* वही, पृ० ८६। † वही, पृ० ६५।

अवनति देख कर श्रीबालकृष्ण भट्ट को जितना कष्ट है उतना कष्ट शायद ही किसी दूसरे व्यक्ति को हो। ब्राह्मणों की अवनति का कारण भी वे इन्हीं (ब्राह्मणों) को बताते हैं। सनातनधर्म और ब्राह्मणत्व की भावना हृदय में बद्धमूल होने के कारण वे भारतेंदु युग के कुछ नवीन सुधारों को ग्रहण नहीं करना चाहते, जिन सुधारों को तद्‌युगीन सामाजिक निबंधकार सहज ही ग्रहण कर लेते हैं। स्वामी दयानंद के आर्यसमाजी आंदोलन की सामयिकता और सार्थकता पर विश्वास रखते हुए भी वे उसके द्वारा विहित जाति-पाँति-तोड़क प्रवृत्ति और विधवा-विवाह-विधान का समर्थन करते हुए नहीं दिखाई पड़ते। इस विवेचना द्वारा हम कहना यह चाहते हैं कि श्रीबालकृष्ण भट्ट के निबंधों की आधार-भूमि है सनातन-धर्म और ब्राह्मणत्व की भावना। ब्राह्मण-वर्ण में होने के कारण ब्राह्मणत्व के विशेष आग्रह पर श्रीबालकृष्ण भट्ट पर कोई उँगली उठा सकता है। पर यह उचित न होगा, क्योंकि ब्राह्मणों की स्वार्थमयी प्रवृत्ति की निंदा वे स्वतः करते हैं। भारतेंदु-युगीन सभी सामाजिक विषयों की चर्चा उस युग की मूल प्रेरणाओं के पूर्ण प्रभाव के सहित उनके सामाजिक निबंधों में प्राप्त होती है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट की निबंध प्रस्तुत करने की पद्धति की एक प्रवृत्ति पर यहीं निर्देश कर दिया जाय। सामाजिक निबंधों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि समस्याओं को स्पष्टतः संमुख रख देने की जितनी प्रवृत्ति इनके निबंधों की है उतनी उन समस्याओं के हल के लिए सुझाव पेश करने की नहीं। सुझाव पेश करनेवाली प्रवृत्ति है अवश्य, पर बहुत ही कम। समस्याओं के चित्र खींच देने के पश्चात् ये 'तथास्तु' 'भवतु' कह कर प्रायः निबंध का अंत कर देते हैं।

श्रीबालकृष्ण भट्ट को लेकर ब्राह्मणत्व की चर्चा ऊपर हुई है। प्राचीन ब्राह्मणों के विषय में उनके हृदय में बड़ी ही भव्य भावना स्थित है। प्राचीन भारत के सामाजिक जीवन में ब्राह्मणों की शक्ति से न निबंधकार ही अनभिज्ञ है और न अन्य व्यक्ति ही। श्रीबालकृष्ण भट्ट का कथन है कि आर्यों का संबंध राजनीति से भी था, इसके उदाहरणस्वरूप वे कुछ वैदिक मंत्र भी उद्धृत करते हैं। कई युगों तक ब्राह्मणों को ही वे प्राचीन भारत की राजनीति का कर्णधार स्वीकार करते हैं और उनकी धारणा है कि जब से ब्राह्मण भारत की राजनीति से अलग हुए तभी से भारत की अवनति का आरंभ हुआ। ब्राह्मणों के इस महत्त्व की चर्चा के साथ ही उनकी दृष्टि ब्राह्मणों की स्वार्थ-परता और दीन-हीन अवस्था पर भी है। ब्राह्मणों की स्वार्थपरता के विषय में वे कहते हैं कि दक्षिणा के लोभ में फँस आप बिगड़े सो बिगड़े हिंदू

धर्म को भी अवतर कर दिया। श्रीबालकृष्ण भट्ट की यह धारणा थी कि यदि ब्राह्मण चेत जायँ तो भारत तुरत ही स्वतंत्र हो जाय। ब्राह्मणों के विषय में उनकी इस प्रकार की धारणाएँ अनेक निबंधों में व्यक्त हैं। विशेषतः "भिन्न भिन्न मतमतांतरों का राजनैतिक विषयों से लगाव"* और 'हमारे सब गुण क्यों फीके हो रहे हैं"† निबंधों में ब्राह्मणों की गिरी हालत पर निबंधकार सर्वत्र दुखी दिखाई पड़ता है। इस कारण वह इनके सुधार के लिए भी मार्ग-निर्देश करता है। उसका कहना है कि दानी सुपात्र ब्राह्मणों को दान दें, प्राचीन ऋषियों की प्रणाली के अनुसार देश भर में ब्राह्मण तैयार किए जायँ। बाल-विवाह रोक दिया जाय। ब्राह्मण भी सांसारिक विषय-वासना, भोग-तृष्णा आदि से हटें। यहाँ स्मरण रखने की बात यह है कि श्रीबालकृष्ण भट्ट की ब्राह्मणों पर विशेष दृष्टि का कारण ब्राह्मणों की ही उन्नति से नहीं, प्रत्युत भारत राष्ट्र की उन्नति से भी है, क्योंकि उनकी मान्यता है कि ब्राह्मण कई युगों तक प्राचीन भारत राष्ट्र के कर्णधार थे और आज भी यदि वे चेत जायँ तो भारत का उद्धार हो जाय। अभिप्राय यह कि जातीयता पर दृष्टि रखकर उन्होंने इन बातों को नहीं कहा है, वरन् भारत की स्वाधीनता पर दृष्टि होने के कारण ऐसा कहा है। यहाँ एक और बात स्मरण रखने की है। वह यह कि ब्राह्मणों की इस अवस्था का संबंध भी भारतेंदु-युग की सामाजिकता से है, जिस (अवस्था) का आरंभ कई सौ वर्ष पूर्व से ही हो गया था। भारत में जैसे निम्न वर्ग के उत्थान की एक समस्या है वैसे ही उच्च वर्ग (ब्राह्मण, क्षत्रिय वर्ग) के उत्थान की भी। अतः इस पर भी विचार आवश्यक है। इस ओर श्रीबालकृष्ण भट्ट की दृष्टि पूर्णतः गई है, इसे हमने देखा है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के हृदय में स्थित भारत की राष्ट्रीय भावना तथा दासता के प्रति चिंता की झलक उपर्युक्त मीमांसा से स्पष्टतः मिलती है। वे भारत के जीवन तथा उसके समाज के कार्य-व्यापारों को राजनीतिक आधार पर स्थित देखना चाहते हैं। 'हमारे सब गुण क्यों फीके हो रहे हैं' शीर्षक निबंध में वे कांग्रेस के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इसके वार्षिक अधिवेशनों की सार्थकता वे स्वीकार करते हैं। स्वामी दयानंद के प्रति उनकी पूरी सहानुभूति है, जिन्होंने अपना आंदोलन राजनीतिक आधार पर चलाया था। परंतु उनका कथन है कि बीच में ही खंडन-मंडन में फँस जाने

---

* हिंदी-प्रदीप, जिल्द २२, संख्या ५।
† वही ,, २७, ,, ५।

के कारण वे कम सफल रहे। इस निबंध के अंत में उन्होंने कहा है—अब होना यही चाहिए कि हमारा धर्म, कर्म, आचार, विचार, रीति-रसम, खेल-कूद, तेवहार-वार सब राजनैतिक आधार पर रक्खे जायँ।

राजनीति को लेकर हृदय में इतनी उच्च भावना रखते हुए भी श्रीबालकृष्ण भट्ट की दृष्टि परतंत्र भारत की यथार्थ परिस्थिति पर भी है। 'अँगरेज़ी तालीम और जातीय शिक्षा'❀ शीर्षक निबंध में उनकी दृष्टि इस पर है कि हमें अँगरेजी शिक्षा तो मिलती है परंतु जातीय शिक्षा (नेशनल एजुकेशन) नहीं मिलती, जिससे हम अपने देश-हित की बात सोच-समझ सकें। 'हिंदू जाति का स्वाभाविक गुण'† शीर्षक निबंध में उनकी दृष्टि इस पर भी है कि हिंदू थोड़े उपकार को बहुत मानते हैं। उनके इस गुण को अकबर ऐसे सम्राट् ने पहचाना था। अँगरेज नहीं पहचान सके, इसका कारण उनकी पूर्ण स्वार्थपरता है। उनकी दृष्टि हिंदुओं की धर्मभीरुता और आध्यात्मिकता पर भी है, जिसे वे गुलामी का कारण बताते हैं। कहते हैं—

प्रत्येक देश की कौम के इतिहासों को पढ़ इनसे मिलाइए तो इसकी टटोल भरपूर आपको हो जायगी और हमारा कहना कहाँ तक सच है इसका अंदाजा आपको हो जायगा। थोड़े उपकार को भी बहुत कर माननेवाले इस जगती तल में दूसरे नहीं हैं। अकबर ऐसे कई एक मुसलमान बादशाहों ने इनमें इस गुण को पहचान लिया था और तदनुसार इनके साथ बर्ते भी जिसका फल यह हुआ कि ये प्राणपन के साथ इनकी फरमाबरदारी से नहीं चूके। हमारे सामयिक शासनकर्ता हर तरह पर बुद्धिमान होकर भी न जाने क्या कारण है कि सौ बरस से ऊपर इनको यहाँ राज्य करते बीत गया सब भाँति इनकी परख भी न जाने के बार कर चुके और पूरी तरह इन्हें राजभक्त पाया तो भी इन्हें न पहचान सके। सच है स्वार्थ का लोभ ऐसा ही प्रबल होता है जिसकी प्रेरणा से मनुष्य स्वार्थांध हो उचित को अनुचित, अनुचित को उचित मानने लगता है।...धर्म भीरु होना भी इस जाति का एक स्वाभाविक गुण है। सब जाय पर परमार्थ और परलोक न बिगड़ने पावे। उसी बुनियाद पर अत्याचारी से अत्याचारी मुसलमान बादशाहों की इताअत करते ही आए तब उनके मुकाबिले तो इनका बहुत दूर तक धर्मराज्य माना गया है।

❀ वही, जिल्द २६, संख्या ४।

† वही, जिल्द २२, संख्या १०, ११, १२।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'* शीर्षक निबंध में उनकी दृष्टि इस पर भी है कि भारत के शासनकर्ताओं का ढंग ऐसा नहीं है कि हम उनसे न्याय पाने की आशा करें। उनकी नीति हमें बलवान् बनाकर शासन करने योग्य नहीं बना सकती। उपर्युक्त निबंध में उन्होंने कहा है कि सरकार हमारी माँग की पराकाष्ठा देखकर हमें फुसलाने के लिए कोई छोटी-सी वस्तु दे देती है। ऐसा करने में भी उनकी नीति भारत का पैसा विदेश भेजने की रहती है। खेती का लगान कम करने, उचित शिक्षा की अड़चनों को हटाने, शासन के काम में हमारी राय लेने, बड़े-बड़े ओहदे हमको देने में हमारी भलाई है। पर ऐसा किया नहीं जाता। दूसरे, तीसरे वर्ष अकाल पड़ता है। इसका कारण हमारी दरिद्रता है। इस (दरिद्रता) को सरकार दूर नहीं करना चाहती। अँगरेजों को इसका प्रमाण मिल चुका है कि हम राजभक्त हैं, पर अपनी स्वार्थपरतावश वे हमारी हालत नहीं सुधारना चाहते। इस प्रकार हमें विदित होता है कि हमारी यथार्थ राजनीतिक परिस्थिति, उसके कारण तथा हमारी विवशता पर भी उनकी दृष्टि है। इस विषय में श्रीबालकृष्ण भट्ट के विचार कितने यथार्थ और उचित हैं, इस विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

भारतेंदु-युगीन वाणिज्य-व्यवसाय, कारीगरी, नौकरी, खेती आदि की गिरी अवस्था पर भी श्रीबालकृष्ण भट्ट का ध्यान गया है। कहना न होगा कि उस समय उपर्युक्त सभी वस्तुओं की अवस्था बड़ी शोचनीय थी और शासनकर्ता की दृष्टि इन पर बिलकुल न थी। अपने यहाँ की वस्तुओं के प्रचार के लिए भारतीय उद्योग-धंधे किस प्रकार नष्ट किए गए थे, इसका परिचय सभी को है। इनके नष्ट हो जाने से कितने आदमी कितनी बुरी तरह बेकार हो गए थे, इसका भी परिचय सभी को है। जब उद्योग-धंधे ही नष्ट कर दिए तब वाणिज्य कैसे टिके। सारा धन विदेशी वस्तुओं के प्रचार के कारण विलायत खिंचा जाता था। उस युग में नौकरी करनेवालों की भी बुरी हालत थी। नौकरी कर केवल यूरोपियन और यूरेशियन प्रसन्न थे, भारतीय नहीं। खेती की अवस्था भी बुरी थी। बहुत अधिक खेती प्रायः दैवी कोप से नष्ट हो जाती थी। इसके अतिरिक्त पैदावार का आधा से अधिक रिन-प्रोत में चला जाता था। इस प्रकार उस युग में वाणिज्य, व्यवसाय, नौकरी, खेती आदि की भी बुरी हालत थी। श्रीबालकृष्ण भट्ट ने इनकी चर्चा 'रुपया पैदा होने के तीन तरीके'† शीर्षक निबंध में किया है।

* वही, जिल्द २८, संख्या ६।
† वही, जिल्द २७, संख्या ६।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के भारतीय आधार पर पूर्णतः टिके विचारों की चर्चा की जा चुकी है। ऐसी अवस्था में दूषित आधुनिक वा अँगरेजी सभ्यता से उनका मन न मिलना स्वाभाविक ही है। उनकी धारणा है कि भारत की ही प्राचीन सभ्यता नहीं, प्रत्युत उसी के समान सभी प्राचीन देशों की सभ्यता की दृष्टि सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति पर रहती है, परंतु आज की सभ्यता इनकी उन्नति में पूर्णतः बाधक प्रमाणित हो रही है। अँगरेजी शिक्षा और सभ्यता पर विचार करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अँगरेजी शिक्षा की अपेक्षा अँगरेजी सभ्यता दूषित है। इस सभ्यता के प्रभाव से भारतीयों में अन्याय, बाहरी टीम-टाम, विषय-वासना, स्वार्थपरता आदि दोषों के आगमन की चर्चा श्रीबालकृष्ण भट्ट ने अपने निबंधों में की है।

स्वदेश के व्यक्तियों और वस्तुओं से दुराव-छिपाव और उनके अनुपयोग तथा विदेशी लोगों और वहाँ की तड़क-भड़कभरी वस्तुओं से मेल-मिलाप और उनके उपयोग पर श्रीबालकृष्ण भट्ट दुखी हैं। अपने भारतीय समाज की उन्नति पर ध्यान न देकर विदेश की सभ्यता की ओर लपकनेवालों पर वे खूब व्यंग्य कसते हुए दिखाई पड़ते हैं। ईसाई बननेवालों, आचार-व्यवहार आदि से अँगरेज बननेवालों, आर्यसमाजी बननेवालों, विधवा-विवाह करनेवालों, विलायत जाकर मेमों से विवाह करनेवालों, अनेक विवाह कर बहुत-सी संतान पैदा करनेवालों और पुरानी रीति-नीति को नष्ट करनेवालों पर वे कड़े व्यंग्य कसने से बाज नहीं आते। महिला-स्वातंत्र्य के विषय में वे मध्यम मार्ग का अवलंबन करना चाहते हैं। वे महिलाओं को न अति आधुनिक बनाने के पक्ष में हैं और न इसी पक्ष में हैं कि वे घर के भीतर रहकर सड़ें। सामाजिक जीवन से संबद्ध श्रीबालकृष्ण भट्ट के विचार इसी प्रकार के हैं, जो 'सभ्यता पिशाची सर्वनाशकारी हुई,'* 'अँगरेजी शिक्षा और अँगरेजी सभ्यता,'† 'प्रभवार्थाय लोकस्य धर्म प्रवचनं कृतम्। यः स्यात् प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः,'†† और 'महिलास्वातंत्र्य'‡ शीर्षक निबंधों में व्यक्त हुए हैं।

श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भारतेंदु-युग के चौथे प्रतिनिधि और प्रसिद्ध सामाजिक निबंधकार हैं, जिन पर विचार करना शेष है। श्रीप्रतापनारायण मिश्र पर विचार करते हुए इसकी चर्चा की जा चुकी है कि इनमें तथा भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की भाषा, शैली आदि में एकता का संबंध जोड़ा जा

---

* वही, जिल्द २५, संख्या १–२। † वही, जिल्द २८, संख्या ४।
†† वही, जिल्द २७, संख्या १–२। ‡ वही, जिल्द २३, संख्या ७–८।

सकता है। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' तथा भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की भाषा, शैली आदि में तो कोई ऐक्य स्थापित नहीं किया जा सकता; हाँ, वे वेष-भूषा, व्यवहार आदि में भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र बनने में प्रयत्नशील रहते थे, ऐसा सुना जाता है। किसी युग की सामाजिक प्रेरणाओं से कोई रचनाकार तो बच ही नहीं सकता, ऐसी स्थिति में भारतेंदु-युग की प्रायः सभी सामाजिक प्रवृत्तियों की छाप श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के निबंधों में प्राप्त होती है। परंतु इनकी रुचि तद्युगीन राजनीति की ओर विशेष झुकी जान पड़ती है, जिसकी छाया इनके निबंधों में विद्यमान है। कांग्रेस द्वारा ये प्रभावित भी विशेष थे। अपनी कविताओं द्वारा इन्होंने दो-एक कांग्रेस के अधिवेशनों के अवसर पर तथा अलग से भी कांग्रेसी नेताओं का स्वागत किया था। एकाध बार इनके नाटक भी इस अवसर पर खेले गए थे। अभिप्राय यह कि इन पर कांग्रेस का प्रभाव विशेष रूप से लक्षित होता है, जो उस युग की प्रधान राजनीतिक संस्था थी। तद्युगीन प्रायः सभी राजनीतिक प्रमुख घटनाओं तथा आंदोलनों की चर्चा इनके निबंधों में हुई है। इस प्रकार राजनीति से ये विशेष प्रभावित प्रतीत होते हैं और यहीं ये अपने युग के अन्य निबंधकारों से अलग किए जा सकते हैं। धर्म, स्वदेश-भावना, अँगरेजी वा आधुनिक सभ्यता आदि उस युग के विषयों पर भी इनके निबंध मिलते हैं।

कांग्रेस और राजनीति की ओर श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की दृष्टि विशेष थी, इसकी चर्चा अभी की गई है। 'नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा'* शीर्षक निबंध में इन्होंने सूरत कांग्रेस के अवसर पर गरम और नरम दल के नेताओं के झगड़े की चर्चा करते हुए इन पर समीक्षात्मक दृष्टि से विचार किया है। निबंधकार की दृष्टि दोनों दलों के नेताओं के भले-बुरे कार्य-कलाप पर है। इसमें एक-एक नेता के भी कर्तव्याकर्तव्य की बात कही गई है। निबंध में फूट के बुरे परिणाम पर श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की दृष्टि जाती है और ये इसे भारत का दुर्भाग्य मानते हैं। यहाँ स्मरण रखने की बात यह है कि निबंधकार की दृष्टि राजनीति के साथ ही धर्म और ईश्वर पर सर्वत्र है। यह राजनीति का ऐसा प्रेमी नहीं है, जो कर्म-कर्म की ही पुकार मचाता है और इस शोरगुल में धर्म और ईश्वर का ध्यान भूल जाता है।

'भारतीय प्रजा के दुःख की दुहाई और ढिठाई पर गवर्नमेंट की कड़ाई'† शीर्षक निबंध में श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने वंगभंग के अवसर पर

---

* आनंद कादंबिनी, माला ७, मेघ १०, ११।

† वही, माला ७, मेघ ३–६।

अँगरेजी शासन-नीति की चर्चा की है। भारतीय इतिहास में वंग-विच्छेद की घटना प्रसिद्ध है। इस प्रसंग को लेकर अँगरेजी शासक द्वारा उस समय यह कहा गया था कि बंगाल जैसे बड़े प्रांत की सुव्यवस्था एक लाट द्वारा नहीं हो पाती, पूरबी बंगाल की बुरी अवस्था पर अब तक किसी लाट की दृष्टि नहीं जाती रही है। अतः इस प्रांत को दो भागों में विभक्त करके इसके शासन का सुप्रबंध करना आवश्यक है। सन् १९०१ से ही इस प्रकार का प्रस्ताव हो रहा था, परंतु कुछ निर्णय नहीं हो पाया था। लार्ड कर्ज़न ने ऐसा कर देना उचित समझा, और सन् १९०५ में पूरबी बंगाल का प्रांत अलग बनाया गया और उसके शासन-प्रबंध के लिए एक लेफ्टिनेंट गवर्नर निर्धारित कर दिया गया। कर्ज़न साहब के इस कार्य से बंगाली बड़े ही असंतुष्ट हुए और उन्होंने कुछ हिंसात्मक प्रणाली भी ग्रहण की। यह आंदोलन विकट रूप धारण करता गया। अंत में यह आंदोलन सरकार द्वारा दबा तो दिया गया पर बंगाली प्रजा असंतुष्ट ही बनी रही। सन् १९११ में दिल्ली-दरबार के अवसर पर सम्राट् की आज्ञा से बंगाल का पुनर्संघटन हुआ। इस आंदोलन के मूल में बंगालियों की राष्ट्रीय एकता की भावना निहित थी। उनकी दृष्टि इस बात पर थी कि इस प्रकार हमारे प्रांत का विभाजन कर के सरकार हमारी राष्ट्रीय एकता नष्ट करना चाहती है। भाषागत एकता पर आक्रमण की आशंका भी इससे उनमें उत्पन्न हुई। बंगालियों का पक्ष वस्तुतः सत्य था। हमारी दृष्टि इस पर भी रहनी चाहिए कि स्वदेशी आंदोलन की प्रेरणा भी येनकेनप्रकारेण वंग-विच्छेद के आंदोलन से मिली थी। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' इन आंदोलनों के विषय में अपनी राय उपर्युक्त निबंध में इस प्रकार प्रकट करते हैं—

चिर दिनों से अपनी अनेक आवश्यकताओं की पुकार का कुछ भी फल न पाकर वंग-भग विचार के संग अनेक सभा-समितियों द्वारा यथाविहित घोर प्रतिवाद और प्रार्थना कर इस सामान्य बात पर भी गवर्नमेंट को अपनी दुहाइ का तिरस्कार करते देख, जिसमें किसी नवीन अधिकार वा सुविधा का प्राप्ति न था वरच एक नवीन कठिनाई और जातीय अवनति की अटल आशा थी, वंगीय प्रजा ने अति अनमना और अधैर्य हो रूठकर स्वदेशी स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार का व्रत धारण किया, जो कोई विशेष अन्यथाचार नहीं कहा जा सकता। प्रतीत ऐसा होता है कि निबंधकार की सहानुभूति इस आंदोलन के प्रति है। वह यह स्वीकार करते हुए भी कि बंगालियों ने कुछ उग्र रूप धारण किया सरकार द्वारा उन्हें दबाने के लिए जो नीति बरती गई वह सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर उसे अनुचित

स्वीकार करता है। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने पूरबी बंगाल में गोरखा सेना तथा मुसलमानों के अत्याचार को अमानुषिक बताया है। इस अवसर पर अन्य प्रांतों में भी सरकारी शासन द्वारा जो गड़बड़ियाँ उपस्थित की गई थीं उनकी भी चर्चा निबंध में हुई है। निबंधकार ने सरकार से अपने गुप्तचरों तथा एंग्लोइंडियन समाचारपत्रों का मुँह बंद करने को कहा है, जो व्यर्थ ही भारतीय प्रजा पर दोषारोपण करके विष वमन करते हैं। उसने कहा है कि सरकार पक्षपात दूर करे, न्याय का अनुसरण करे, प्रजा को मना ले, उग्र नीति का अवलंबन न करे,—देश में हाहाकार मच रहा है। उसकी नीति से प्रजा को दृढ़ निश्चय होता जा रहा है कि वह हमारे दुःख-सुख की चिंता छोड़ अपने स्वार्थ-साधन में दत्तचित्त है।

भारतीय स्वातंत्र्य पर विचार करनेवालों के संमुख हिंदू-मुसलिम एकता का भी एक प्रधान प्रश्न आरंभ से ही रहा है। इनसे एक होने की प्रार्थना बहुत दिनों से लोग करते आ रहे थे। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी 'भारतीय प्रजा के दो दल'* शीर्षक निबंध में इनसे यही प्रार्थना की है। यह सभी पर विदित है कि इन दोनों जातियों का प्रश्न बड़ा जटिल है। कारण यह है कि इसमें दो तत्त्व मिले हैं, एक धार्मिक और दूसरा राजनीतिक; और ये दोनों तत्त्व अपने-अपने रूप में बड़े विचित्र हैं। ऐसी स्थिति में इनमें ऐक्यभावना तभी स्थापित हो सकती है जब ये दोनों एक दूसरे की धार्मिक तथा राजनीतिक सुविधा-असुविधा पर दृष्टि रखें और उदारता का व्यवहार करें। निबंध में सरकारी नीति—फूट उपजाओ और शासन करो—पर भी लेखक का ध्यान गया है। इसका ध्यान इस पर भी गया है कि मुसलमान हिंदुओं से अलग होकर राजनीतिक दृष्टि से अपनी हानि बराबर करते आ रहे हैं। इस प्रकार हमें विदित होता है कि श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की दृष्टि भारतीय राजनीति पर विशेष है। इसके साथ ही धर्म पर भी उनकी दृष्टि बराबर है। निबंध के अंत में हिंदू और मुसलमान से इस प्रकार निवेदन किया गया है।—

निदान अब यह समय है कि भारत की प्रजा में दो दल अथवा कई दल क्यों न हों, परंतु उन्हें परस्पर का द्रोह और विरोध भूल करते हुए ऐक्य उत्पन्न कर आपस में मिल कर देश के हित साधन में संलग्न होना चाहिए। क्योंकि इसी कारण भारतवर्ष की ऐसी हीन दशा हुई है। और जब तक यह विरोध यों ही बना रहेगा इसके उद्धार का कोई उपाय न होगा।

* वही, माला ६, मेघ ४।

मुनराम हिंदू और मुसलमान दोनों दल को अब अपने-अपने आग्रह को शिथिल करके परस्पर स्नेह वर्धन में यत्नवान् होना चाहिए।

श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के 'विदेशीय शर्करा वा विलायती शक्कर'* शीर्षक निबंध में उनकी धार्मिक भावना व्याप्त है। इसमें कहा गया है कि बड़े-बड़े धार्मिक व्यक्ति बाजार की फलाहारी मिठाई खाते हैं; परंतु वे नहीं जानते कि उसकी शर्करा प्राचीन भारत का शक्कर नहीं है। भारतीय शक्कर भी रहता है तो उसमें विलायती शर्करा मिला दी जाती है, जो हड्डी और गोरक्तादि से स्वच्छ होती है। उपर्युक्त निबंध में केवल शर्करा को ही लेकर खान-पान की पवित्रता पर दृष्टि रखी गई है, जिसकी प्रेरणा धार्मिक है।

अँगरेजी या आधुनिक सभ्यता के संपर्क से भारतीयों के जीवन में जितने अवांछित परिवर्तन हुए हैं उन पर भारतेंदु-युग के सभी सामाजिक निबंधकारों की दृष्टि है। इस युग के सभी निबंधकार इस परिवर्तन की अनुपयुक्तता सिद्ध करते हैं। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी इस विषय में उपर्युक्त विचार ही प्रकट किए हैं, जो 'पुरानी का तिरस्कार और नई का सत्कार'† शीर्षक निबंध में देखे जा सकते हैं। उन्होंने इसमें कहा है कि पुरानी का तिरस्कार और नवीन का सत्कार स्वाभाविक है, परंतु उन लोगों की बुद्धि मारी गई जान पड़ती है जो आधुनिक फैशन के चक्कर में पड़कर निकम्मी, ओछी और विदेशी नवीन वस्तुओं का सत्कार करते हैं। स्मरण रखने की बात यह है कि इस निबंध में लेखक की दृष्टि भारतीयों द्वारा प्राचीन प्रसाधनों के त्याग और नवीन के ग्रहण पर ही है। वह विदेशी प्रसाधनों को भारतीय जलवायु के नितांत विरुद्ध सिद्ध करता है, और इनसे दूर रहने को सजग करता है। इस निबंध की विशेषता यह है कि इसकी सभी बातें हास्य-व्यंग्य और विनोद की पद्धति पर कही गई हैं। एक उदाहरण लीजिए—

सारांश, आज सभी हिंदोस्तान निवासी, चाहे वह आर्य संतान हों या मुसलमान, हिंदोस्तानी कहलाते लजाते हैं, सफेद साहिब बनने की लालसा से अपनी पुरानी चाल-चलन को छोड़ने और दूसरों की ग्रहण करने में कुछ भी संकोच नहीं करते। उन्हें दूसरों की अच्छी बुरी की कुछ भी तमीज नहीं, उन्हें तो सीधा आँख मूँद वही करना भाता है कि जो आज श्वेतांग लोग करते हैं। ये औंधे खोपड़ी के लोग यह कदापि नहीं विचारते कि वे ऊष्ण प्रधान देशवासी हैं। अतः उनका अनुकरण हमें कदापि सुविधाजनक नहीं।······इतना नहीं सोचते कि आजकल इस पहनावे में पाल में पड़े, आम से पक कर घुल जायँगे!

---

* वही, माला ६, मेघ ७। † वही, माला ७, मेघ १२।

भारत में विदेशी अन्य वस्तुओं के प्रचार की चर्चा श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार'• शीर्षक निबंध में की है। इसमें इन्होंने कहा है कि विदेशी सभ्यता के प्रचार के कारण भारत का पंचतत्त्व भी परिवर्तित हो गया है। कोई भारतीय वस्तु दिखाई ही नहीं पड़ती। शिक्षा दीक्षा, विद्या-बुद्धि, गति-मति, रीति-नीति, प्रीति, चाल-ढाल, खान-पान, व्यायाम, विश्राम, नाम, काम आदि सब विदेशी हो गये हैं। इसी कारण स्वदेशी वस्तुओं का मिलना दुर्लभ हो गया है। जिन वस्तुओं का हम उपयोग करते हैं वे भारत में भी बनती हैं, परंतु हमारी प्रवृत्ति कुछ ऐसी परिवर्तित हो गई है कि वे हमें नहीं भातीं। इंगलैंड, अमेरिका, चीन, जापान, फ्रांस, ईरान आदि की वस्तुएँ ही हमें भाती हैं। इसका कारण अँगरेजों का अनुकरण है। इस पर हम ध्यान नहीं देते कि अँगरेज विदेश में रहकर भी अपने देश की वस्तुओं का उपयोग करते हैं और हम इसके ठीक विपरीत काम करते हैं। निबंधकार की दृष्टि में स्वदेशप्रेम, स्वदेशोद्धार और स्वदेशी शिल्पकला की उन्नति करना भारतीयों के लिए आवश्यक है। उसका यह भी कहना है कि स्वदेशी वस्तु यदि मँहगी और निकम्मी भी मिले तो हम उसे ही खरीदें, विदेश की वस्तु को अच्छी होने पर भी न मोल लें। निबंधकार की यह भी सलाह है कि हम अपने यहाँ की निकम्मी वस्तु को सुंदर करने और जो वस्तु न बनती हो उसे बनाने का प्रयत्न करें। इस निबंध द्वारा श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का स्वदेश और स्वदेशी प्रेम पूर्णतः जाना जा सकता है। एक जगह कहते हैं—

···जो वस्तुएँ हमारे यहाँ बनती हैं, यदि वे विदेशी पदार्थों सी सुंदर और सस्ती नहीं हैं तो उन्हें तत्तुल्य करने की चेष्टा करनी चाहिए न कि उनका सर्वथा अभाव। उसका एकमात्र उपाय और कारण केवल उसमें निज रुचि का स्थापन मात्र है। इसी भाँति जो वस्तुएँ अभी देश में अलभ्य हैं उनको देश में निर्माण करने की चेष्टा करना परमावश्यक है। जिसके अर्थ बहुत कुछ आत्मत्याग, देशानुराग, दृढ़प्रतिज्ञा आदि गुणों की आवश्यकता है।···देश के अग्रसरों को बहुत ही सुसमाहित हो इस समय कार्यानुसरण करना चाहिए और सर्वसामान्य भारतीय प्रजा को प्रमादशून्य स्वदेशानुराग का व्रत लेते हुए अपने उचित उद्योग में संलग्न होना चाहिए जिससे अवश्य ही कल्याण की आशा है। क्योंकि ईश्वरानुग्रह से अब देश सुषुप्ति अवस्था का विसर्जन कर बहुत कुछ चैतन्यता लाभ कर चला है।

• वही, माला ६, मेघ ८।

भारतेंदु-युग के प्रसिद्ध और प्रतिनिधि निबंधकारों की इस मीमांसा का लक्ष्य उस युग के निबंध की सभी प्रवृत्तियों को, जो तद्‌युगीन सामाजिक प्रेरणाओं से प्रभावित हैं, दिखाना है। इस मीमांसा का लक्ष्य यह भी दिखाना है कि उस युग के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि नेताओं के जो पक्ष थे वा हो सकते थे वे ही उस युग के उपर्युक्त प्रधान निबंधकारों के भी हैं, अर्थात् अपने क्षेत्र में जो कार्य उस युग के नेताओं ने किया वही कार्य उपर्युक्त प्रधान निबंधकारों ने भी अपने क्षेत्र में किया। इस प्रकार इसी मीमांसा का लक्ष्य यह भी दिखाना है कि जीवन और समाज को जाग्रत् करने में हिंदी के भारतेंदु-युगीन निबंधकारों का भी प्रधान हाथ रहा है।

भारतेंदु-युगीन सामाजिक निबंधकारों ने समाज के बहुत ही व्यापक दायरे पर दृष्टि रखकर उस (समाज) के संबंध में जो बातें कही हैं वे अभिव्यक्ति की सीधी, शैली (डिरेक्ट स्टाइल आव् इक्सप्रेशन) में कही हैं। इन बातों के कहने में 'कहना' ही उनका लक्ष्य है। इनकी अभिव्यक्ति में कहीं भी साहित्यिक चमत्कार दिखलाकर यशस्वी बनने की वृत्ति उनमें दृष्टिगत नहीं होती। इस अभिव्यक्ति की सीधी शैली द्वारा ज्ञात होता है कि इन बातों को कहने के लिए उनकी बुद्धि, हृदय, मन, प्राण में बहुत बड़ी ईमानदारी थी; इन्होंने इनकी अभिव्यक्ति अत्यावश्यक मानी, इन बातों को बिना अभिव्यक्त किए जैसे उनका मन ही न मानता। मतलब यह कि जीवन तथा समाज में उस युग में जो त्रुटियाँ थीं उनका बार-बार उल्लेख कर, उन पर अजस्र आघात कर वे उस युग के लोगों को इनके प्रति जागरूक बना इनको समाज से निर्मूल कर देना चाहते थे। इस प्रकार तद्युगीन जीवन तथा समाज में मंगल की स्थापना कर उनकी अदम्य अभिलाषा के प्रति रंचमात्र भी संदेह नहीं किया जा सकता।

तद्युगीन सामाजिक निबंधकारों के कहने का ढंग चाहे साहित्य न होकर सामान्य हो; उनके निबंधों में उद्धरण और उदाहरण चाहे नित्य जीवन और समाज में चलनेवाले और हमारे जाने-पहचाने हों, जिन्हें आज का निबंधकार अपनी रचनाओं में देना अपनी हेठी समझता हो, उनके निबंधों में विद्या-बुद्धि की चाहे सुष्ठु भूमिका के दर्शन कम मिलें, आज का निबंधकार जिस पर सबसे पहले दृष्टि रखकर रचना के लिए अग्रसर होता है, फिर भी जीवन तथा समाज में शिव की स्थापना के लिए अपनी अभिव्यक्ति पद्धति से, जो तब तक चाहे अपूर्ण ही रही हो, उन्होंने निस्संकोच सारी बातें कह डाली हैं। यह उनके हृदय, मन, बुद्धि की ईमानदारी है। एक साहित्यकार ने [illegible] लक्षण है।

५

साहित्यिक निबंध

विवेचन की सुविधा के लिए ही भारतेंदु-युग के निबंधों को दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया था—अर्थात् सामाजिक श्रेणी में और साहित्यिक श्रेणी में। उस युग के सामाजिक श्रेणी के निबंधों की मीमांसा हुई है; अब शेष है साहित्यिक श्रेणी के निबंधों की मीमांसा। यहाँ हम इसे स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि उस युग के सामाजिक तथा साहित्यिक निबंधों के बीच कोई ऐसी रेखा नहीं खींची जा सकती जिससे वे दोनों बिलकुल अलग हो जायँ। अभिप्राय यह कि दोनों का संबंध एक दूसरे से है। उस युग के सामाजिक निबंध प्रायः विचारात्मक श्रेणी में आते हैं, जिनमें यत्र-तत्र भावात्मकता का गहरा पुट है; जिस पुट का संबंध निबंधकार के भावों से तो है ही, पाठक वा श्रोता पर प्रभाव डालने के लक्ष्य से भी उस (पुट) का संबंध है। ऐसी स्थिति में जहाँ-जहाँ भावात्मकता की निहिति उनमें है वहाँ-वहाँ साहित्यिकता भी अवश्य ही आ गई है। इसके अतिरिक्त सब से बड़ी बात तो यह है कि उस युग के सामाजिक निबंध भी साहित्यिक व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं और सच्चे तथा पक्के साहित्यिक व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। भाषा और विधान-पद्धति की दृष्टि से तो इस श्रेणी के निबंधों में साहित्यिकता है ही। यहीं यह भी कह दें कि इस श्रेणी के निबंधों में इतनी ही साहित्यिकता की गुंजायश भी है। इसका कारण यह है कि सामाजिक निबंधों में निबंधकार की दृष्टि निबंध-कला पर नहीं रहती। उसमें तो वह अपने विचारों को सीधे और स्पष्ट रूप से प्रभावशाली पद्धति द्वारा पाठक और श्रोता तक पहुँचाना भर चाहता है। जैसे सामाजिक निबंधों का संबंध साहित्यिक निबंधों से है वैसे ही साहित्यिक निबंधों का संबंध भी सामाजिक निबंधों से है, अर्थात् भारतेंदु युग के साहित्यिक निबंधों में भी तत्कालीन समाज की गतिविधि का चित्रण प्रायशः मिलता है। स्मरण यह रखना है कि इस

सामाजिक गतिविधि की चित्रण-पद्धति में प्रधानता साहित्यिकता की है; अर्थात् भारतेंदु-युग के साहित्यिक निबंधों में उस युग के समाज की छाप लगाई गई है साहित्यिक ढंग से और इस साहित्यिक ढंग में प्रधानता है हास्य, व्यंग और विनोद की। तात्पर्य यह कि उस युग के साहित्यिक निबंधों में हास्य, व्यंग्य और विनोद द्वारा ही प्रायः समाज की कमजोरियों तथा शासक की मनमानी का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। साहित्यिक निबंधों में हास्य, व्यंग्य और विनोद की पद्धति पर समाज के चित्रण का प्राधान्य हम श्रीभारतेंदु और श्रीप्रतापनारायण मिश्र के साहित्यिक निबंधों में पाते हैं। हिंदी-साहित्य के तीन व्यक्तियों को हम शिष्ट और प्रभावात्मक हास्य, व्यंग्य और विनोद का सम्राट् स्वीकार करते हैं, जिनका कार्य इस क्षेत्र में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि उनका क्षेत्र यह नहीं था। उनके नाम हैं—भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र, श्रीप्रतापनारायण मिश्र और श्रीरामचंद्र शुक्ल। श्रीरामचंद्र शुक्ल के शिष्ट और निखरे हुए हास्य, व्यंग्य और विनोद के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

साहित्यिक निबंधों की व्याप्ति के विषय में कहना यह है कि इनके अंतर्गत निबंध की पाँच साहित्यिक पद्धतियों पर प्रस्तुत हुए निबंध भी आते हैं और साहित्यिक विषय पर प्रस्तुत हुए निबंध भी। निबंध की पाँच साहित्यिक पद्धतियों से हम परिचित हैं, अर्थात् विचारात्मक, भावात्मक, आत्मव्यंजक, वर्णनात्मक और कथात्मक पद्धतियाँ। साहित्यिक विषय से तात्पर्य उन विषयों से है, जिनका संबंध साहित्य के इतिहास, उसके सुधार, प्रचार आदि से है। क्योंकि साहित्य के समान ही विज्ञान और इतिहास का संबंध भी विद्या से है अतः साहित्यिक निबंधों के भीतर हम वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर लिखे गए निबंधों को भी ले सकते हैं।

विचारात्मक निबंधों की सीमा बड़ी व्यापक है; वह इस कारण कि निबंध चाहे किसी भी पद्धति के अनुसरण पर लिखे जायँ उनमें विचार की—बुद्धि की—अपेक्षा तो होगी ही। फिर भी जिन निबंधों में इसका प्राधान्य हो उन्हें विचारात्मक कोटि में रख दिया गया है। साहित्य, विज्ञान और इतिहास आदि विषयों पर लिखे गए निबंधों वा लेखों में भी विचारात्मकता का प्राधान्य होता है। किंतु भारतेंदु-युग के साहित्यिक निबंधों की विवेचना करते समय इन पर अलग ही विचार करना उचित प्रतीत होता है, इसका कारण यह है कि इस प्रकार के निबंधों की पद्धति साहित्यिक हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती। परंतु जिन निबंधों की पद्धति साहित्यिक होगी, उनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि उनका विषय साहित्यिक हो ही। चाहे किसी भी विषय को लेकर

साहित्यिक पद्धति पर निबंध प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार निबंधों पर विचार करते समय हमारी दृष्टि पद्धति पर विशेष है।

वैसे तो भारतेंदु-युग के प्रायः सभी निबंधकारों ने विचारात्मक निबंध लिखे हैं—और यह बात प्रायः सभी प्रकार के निबंधों के विषय में कही जा सकती है—परंतु इस क्षेत्र में श्रीबालकृष्ण भट्ट का कार्य प्रभूत और महत्त्वपूर्ण दोनों है। उन्होंने समाज, जीवन, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों से छोटे तथा बड़े विषयों को लेकर विचारात्मक निबंध प्रस्तुत किए हैं, जिनमें गांभीर्य, विवेचन, स्पष्टता आदि विचारात्मक निबंधसुलभ सभी विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। श्रीबालकृष्ण भट्ट बहुपठ और पंडित व्यक्ति थे, अतः उनके निबंधों में गांभीर्य का प्राधान्य है। उनको भारतेंदु-युग के विचार-प्रधान वा गंभीर निबंधकारों का प्रतिनिधि स्वीकार किया जा सकता है।

भारतेंदु-युग के विचारात्मक निबंधों की प्रवृत्ति की चर्चा करते हुए उस युग में मनोविकारों वा मन और हृदय की वृत्तियों पर लिखे गए निबंधों की प्रवृत्तियों की चर्चा भी आवश्यक है। इसका निर्देश कर दिया जाय कि इस प्रकार के विचारात्मक निबंध प्रस्तुत करनेवालों में भी श्रीबालकृष्ण भट्ट अग्रणी हैं। हिंदी-साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा मनोविकारों पर प्रस्तुत हुए साहित्यिक निबंधों की परंपरा बड़ी प्राचीन है। वह भारतेंदु युग से ही चलती है, जब से हिंदी में निबंध का निर्माण आरंभ हुआ। हाँ, इस विषय पर निबंध लिखनेवालों की विवेचना-पद्धति में भिन्नता अवश्य है। परंतु यह तो सत्य है कि मनोविकारों वा हृदय और मन की प्रवृत्तियों पर निबंध लिखने की चाल हिंदी में बहुत दिनों से चली आ रही है। भारतेंदु-युग में इस विषय पर लिखे गए निबंधों के लिए कहना यह है कि ये आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत हुए मनोविकार संबंधी निबंधों की भूमिका मात्र हैं, अर्थात् उनके विकास के ये आरंभिक रूप ही हैं। इनमें साहित्यिकता, विवेचनात्मकता और प्रौढ़ता है अवश्य परंतु उस कोटि की नहीं जिस कोटि की आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में। यह हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भारतेंदु-युग में निबंध के निर्माण का आरंभ ही हुआ था। उस युग के इस प्रकार के निबंधों में मनोविकारों के ऊपरी रूप की—व्यावहारिक रूप की—ही मीमांसा मिलती है। मनोविकारों की तह तक पैठ कर उनकी विवेचना नहीं मिलती। जैसा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया है। इस प्रकार के निबंधों के विषय में यह भी स्मरण रखना है कि इनमें से कुछ ऐसे हैं जिनमें सामाजिकता और शिक्षात्मकता का प्राधान्य है। कुछ तो इसी उद्देश्य से लिखे ही गए हैं। इस उद्देश्य से लिखे गए निबंधों में मन की

किसी प्रवृत्ति की विवेचना कर उससे लाभ-हानि, शिक्षा आदि का वर्णन विशेष रूप से कर दिया गया है।

भारतेंदु-युग में श्रीबालकृष्ण भट्ट के अतिरिक्त भी कुछ निबंधकारों ने मनोविकारों पर निबंध प्रस्तुत किए हैं। जैसे, श्रीबिहारी चौबे और लाला श्रीनिवासदास। श्रीबिहारी चौबे का 'प्राण-प्रीति'* पर लिखा हुआ निबंध मिलता है, जिसमें जीवन की वा जीने की इच्छा का विचार किया गया है। निबंध विचारात्मक है। इसमें उदाहरणस्वरूप यत्र-तत्र चीन, फ्रांस और इंगलैंड के विशिष्ट पुरुषों का उल्लेख भी है। निबंध की शैली और भाषा में प्राचीनता—भारतेंदु-युग वाली—अवश्य है। इसमें पाठकों वा मित्रों को संबोधित भी किया गया है। स्वरचित एकाध दोहे भी विवेच्य विषय को लेकर रखे गए हैं। भाषा में भी भारतेंदु-युगीन प्राचीनता है। वह एकाध स्थलों पर सदोष भी है।

'सदाचरण'† पर लिखा हुआ लाला श्रीनिवासदास का निबंध भी विचारात्मक है। इसका लक्ष्य शिक्षात्मकता है। देशी तथा विदेशी कुछ दृष्टांत भी इसमें हैं। इसमें श्रीनिवासदास के अँगरेजी ज्ञान का अच्छा प्रभाव है—भाषा में भी और उदाहरण आदि के देने में भी।

भारतेंदु-युग में भावात्मक निबंधों की गतिविधि सुष्ठु नहीं लक्षित होती। भावात्मक निबंधों की विशेषता होनी चाहिए उनमें भावों की तीव्रता, जिसके कारण उनमें प्रभावात्मकता का प्राचुर्य निहित होता है। परंतु हिंदी के भावात्मक निबंधों में यह तत्त्व मिलता नहीं। उनमें काव्यात्मकता का प्राधान्य मिलता है, जो वर्णनात्मक निबंधों का प्रमुख तत्त्व है। हिंदी के कुछ भावात्मक निबंधों में भावात्मकता तथा काव्यात्मकता दोनों है, यह उनका सुंदर रूप है। भारतेंदु-युग के भावात्मक निबंधों में हमें काव्यात्मकता ही अत्यधिक मिलती है और भावात्मकता अत्यल्प। भारतेंदु-युग के दो बड़े प्रसिद्ध भावात्मक निबंध हैं। एक श्रीभारतेंदु का 'सूर्योदय'⊙ और दूसरा श्रीबालकृष्ण भट्ट का 'चंद्रोदय'‖। इनमें सूर्योदय तथा चंद्रोदय का काव्यात्मक पद्धति पर वर्णन है, जिसमें उपमा तथा उत्प्रेक्षा शैली का प्राचुर्य है। इन निबंधों द्वारा किसी प्रकार के भाव की तीव्रता का अनुभव नहीं होता। हाँ, आलंकारिक काव्यात्मकता का आनंद इनसे अवश्य मिलता है।

---

* हरिश्चंद्र चंद्रिका, खंड १, संख्या ११, सन् १८७४ ई०।

† भारतेंदु, पुस्तक १, अंक ५, सन् १८८३ ई०।

⊙ श्रीरामचंद्र शुक्लसंपादित भारतेंदु-सुधा।

‖ श्रीबालकृष्ण भट्ट कृत साहित्य-सुमन।

भारतेंदु-युग में आत्मव्यंजक निबंध लिखनेवाले प्रधानतः तीन व्यक्ति हैं — भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र, श्रीप्रतापनारायण मिश्र और श्रीबालकृष्ण भट्ट। परंतु इस क्षेत्र में श्रीप्रतापनारायण मिश्र का महत्त्व अत्यधिक है। यदि सच पूछा जाय तो श्रीप्रतापनारायण मिश्र के ही आत्मव्यंजक निबंध अपने रूप के सच्चे प्रतिनिधि हैं। आत्मव्यंजक निबंधों की प्रधानतः दो विशेषताएँ स्पष्टतः लक्षित होती हैं, एक तो इनके विषय की तुच्छता (ट्रिभियलिटी ऑव् सब्जेक्ट) और दूसरी इनके द्वारा विषय के ज्ञान की अपेक्षा निबंधकार के व्यक्तित्व की अधिक जानकारी। अभिप्राय यह कि आत्मव्यंजक निबंध में ही निबंधकार को अपने को खोलने का अच्छा मौका रहता है, जिसके लिए वह विषयांतर भी करता है। श्रीप्रतापनारायण मिश्र के आत्मव्यंजक निबंधों में उपर्युक्त सभी विशिष्टताएँ मिलती हैं। भारतेंदु युग के आत्मव्यंजक निबंधों में उपर्युक्त तत्त्व तो मिलते ही हैं, उनको देखते समय कुछ और बातों पर भी दृष्टि जाती है। आत्मव्यंजक निबंध प्रायः हलके साहित्य (लाइट लिटरेचर) की कोटि में आते हैं। भारतेंदु-युग के इस प्रकार के निबंध भी इसी कोटि में आएँगे। 'हलके साहित्य' से हमारा दो तात्पर्य है, एक तो विषय को प्रतिपादित करने की सामान्य, सरल तथा मनोरंजक शैली से और दूसरा विषय को गूढ़ न बनाने से। भारतेंदु-युग के इस कोटि के निबंधों में विषय बोझिल होता-सा नहीं प्रतीत होता। यदि कहीं गांभीर्य आ भी जाता है तो निबंधकार अपनी मनोरंजक शैली द्वारा तुरत गांभीर्य के पश्चात् हलकापन ला देते हैं। निबंधकारों की जिंदःदिली की पूरी झलक उस युग के इस प्रकार के निबंधों से मिलती है। भारतेंदु-युग के आत्मव्यंजक निबंधों में हास्य, व्यंग्य, विनोद तथा समय की छाप की संस्थिति भी अच्छी है।

इस युग के आत्मव्यंजक निबंधों को देखने से विदित होगा कि इनको प्रस्तुत करने में निबंधकारों को जो प्रेरणा मिली है वह पूरी कलात्मक है, अर्थात् इस युग के निबंधकारों ने इस प्रकार के निबंधों को लिखते समय कला वा चमत्कार की ओर दृष्टि अवश्य रखी है। इसी कारण इस युग के इस कोटि के कुछ निबंध ऐसे हैं जिनमें केवल मुहावरों का ही चमत्कार प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार ये जिन विषयों पर लिखे गए हैं उनके प्रतिपादन में भी कलात्मकता और कारीगरी की झलक प्रायः मिलती है। हम कहना यह चाहते हैं कि इस प्रकार के निबंध निबंधकारों की मनमौज की अभिव्यक्ति हैं। इनका उद्देश्य कुछ-कुछ वैसा ही है जैसा कि 'कला के लिए कला' का। इनमें जो समय की छाप है वह प्रसंगात् ही आ गई है, इसको लाने के लिए निबंध नहीं रचे गये हैं।

भारतेंदु-युग में वर्णनात्मक निबंधों की रचना भी अच्छी हुई। इस युग में वर्णनात्मक निबंधों का विषय प्रधानतः प्रकृति और गौणतः यात्रा तथा पर्यटन रहा। वैसे तो वर्णनात्मक निबंधों की रचना उस युग के प्रायः सभी निबंधकारों द्वारा हुई परंतु भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र और श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय ने इस क्षेत्र में विशेष कार्य किए। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के भी कुछ वर्णनात्मक निबंध मिलते हैं। श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय की प्रवृत्ति वर्णन की ओर अत्यधिक लक्षित होती है। ये तो वर्णनात्मक ढंग के अतिरिक्त भी यदि कोई निबंध प्रस्तुत करते थे और उसमें वर्णनात्मक स्थलों का संनिवेश हो सकता था तो बिना वर्णन किए आगे नहीं बढ़ते थे। ये वर्णनात्मक शैली का उपयोग भी अत्यधिक करते थे, अर्थात् उसमें काव्यात्मकता का प्राधान्य होता था। वर्णन काव्य का विषय है भी। श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय की वर्णन की ओर अधिक प्रवृत्ति के कारण हम उन्हें भारतेंदु-युग के वर्णनात्मक निबंधकारों का प्रतिनिधि कह सकते हैं।

श्रीविनायक शास्त्री बेताल के भी कुछ वर्णनात्मक निबंध मिलते हैं। जैसे, 'श्रीचतुर्भुज यात्रा'। इन्होंने विचारात्मक निबंध भी प्रस्तुत किए हैं। जैसे, 'सज्जन प्रशंसा और दुर्जन गुण वर्णन'। उस युग के ये अच्छे निबंधकार थे। समय को देखते हुए इनकी भाषा अपेक्षाकृत शिष्ट होती थी। इनके वर्णनात्मक निबंधों के विषय में कहना यह है कि उनमें काव्यात्मकता की कमी है।

भारतेंदु-युग के निबंधकारों की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है उनके द्वारा कथात्मक निबंधों की रचना। हिंदी-साहित्य के निबंध के क्षेत्र में शैली की दृष्टि से भारतेंदु-युग की सब से बड़ी देन कथात्मक निबंध ही हैं। इसे हम इसलिए कह रहे हैं कि उस युग के बाद इस प्रकार के निबंधों की रचना क्रमशः कम होती गई और आज तो ऐसे निबंध दिखाई ही नहीं पड़ते। इसका कारण संभवतः कथा-साहित्य का वर्तमान युग में प्रचुर प्रचार और प्रसार है।

इस युग के कथात्मक निबंधों की यह पद्धति रही है कि इसके द्वारा निबंधकार किसी लक्ष्य वा सिद्धांत का प्रतिपादन करके शिक्षा देना चाहते थे। इसके लिए वे लक्ष्य वा सिद्धांत को निबंध के आरंभ में ही व्यक्त कर देते थे। ऐसा करने के पश्चात् वे निद्रा से अभिभूत हो उसमें (निद्रा में) स्वप्न को बुलाते वा उसका वर्णन करते थे, जिसमें लक्ष्य वा सिद्धांत को प्रतिपादित वा स्पष्ट करने के लिए उदाहरण रूप में किसी कथा का वर्णन होता था। निबंध का अंत लक्ष्य वा सिद्धांत का पुनर्कथन से होता था, जिसे वे आरंभ में कह चुके रहते थे। इस प्रकार के निबंधों का अंत तनिक पुराने ढंग से होता था। अंत में

निबंधकार पाठकों को संबोधित करके उन्हें दुर्गुणों से बचने के लिए आगाह करते थे। कुछ निबंधों का अंत आशीर्वादात्मक पद्धति पर भी हुआ है। कथात्मक निबंधों की एक और विशेषता लक्षित होती है। वह विशेषता है उनमें वर्णन के स्थलों की स्थिति की। भारतेंदु-युग के कुछ कथात्मक निबंधों में समय की छाप भी हास्य, व्यंग्य और विनोद की पद्धति से मिलती है। ऐसे कथात्मक निबंधों में मनोरंजकता का संनिवेश अच्छा है।

भारतेंदु-युग के प्रमुख कथात्मक निबंधकार और निबंध ये हैं—भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र का 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न', राजा शिवप्रसाद का 'राजा भोज का स्वप्ना,' श्रीतोताराम का 'स्वप्न,' श्रीबालकृष्ण भट्ट का 'एक अनोखा स्वप्न'* और श्रीकेशवप्रसाद सिंह का 'आपत्तियों का पर्वत'†। ये सभी निबंध किसी न किसी लक्ष्य को प्रतिपादित करने के उद्देश्य से ही लिखे गए हैं।

'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न,' 'स्वप्न' तथा 'राजा भोज का स्वप्ना' के लेखकों के विषय में हिंदी-साहित्य में कुछ भ्रम है। अतः इसके निवारण का भी कुछ प्रयत्न होना चाहिए। 'राजा भोज का स्वप्ना' के लेखक राजा शिवप्रसाद माने जाते हैं। परंतु बात ऐसी नहीं है। यह उनकी मौलिक रचना नहीं है, उनके द्वारा अनूदित है। इसकी मौलिक लेखिका हैं मिस सी० एम्० टकर। हमारी बात सन् १९०५ (तृतीय संस्करण) में प्रकाशित 'राजा भोज का स्वप्ना' नाम्नी पुस्तिका के मुखपृष्ठ को देखने से स्पष्ट हो जायगी, जो इस प्रकार है—

"राजा भोज का स्वप्ना"

राजाज ड्रीम

बाइ

मिस सी० एम्० टकर

ट्रांसलेटेड

बाइ

राजा शिवप्रसाद,

सी० एस० आइ०

फार

एच० सी० टकर, एस्क्वायर; बी० सी० एस०

यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि राजा शिवप्रसाद ने इसका

---

* हिंदी-प्रदीप, जिल्द २०, संख्या ५-६-७, सन् १८९७ ई०।

† श्रीश्यामसुंदरदाससंपादित हिंदी-निबंधमाला, पहला भाग।

अनुवाद अँगरेजी से किया होगा। परंतु इसकी मूल लेखिका को इसको लिखने की प्रेरणा किसी संस्कृत-रचना द्वारा अवश्य मिली होगी. इसमें भी कोई संदेह नहीं जान पड़ता। कारण यह है कि निबंध में भारतीयता की छाप आद्योपांत है।

'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' के लेखक के विषय में भी विचित्र धारणा का प्रचार है। कुछ लोग इसे भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की रचना बताते हैं और कुछ लोग श्रीतोताराम की। कभी-कभी तो एक ही लेखक इसे लिखा हुआ बताते हैं श्रीतोताराम का और उद्धृत करते हैं भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के नाम से। जहाँ तक हिंदी के संग्रह-ग्रंथों की बात है वहाँ तक यह निबंध भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के नाम से ही उद्धृत हुआ मिलता है। और इस बात का प्रचार भी है कि यह रचना उन्हीं की है। इस निबंध के विषय में एक और बात भी जान रखनी चाहिए वह यह कि अपने मूल स्थान के अतिरिक्त यह सर्वत्र अधूरे रूप में ही मिलता है। बात यह हुई कि सबसे पहले यह संग्रह-ग्रंथ में लाया गया लाला भगवानदीन और श्रीरामदास गौड़ द्वारा। उस संग्रह-ग्रंथ का नाम है 'हिंदी-भाषा-सार', जो संवत् १९७३ में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह में यह निबंध जिस अधूरे रूप में संगृहीत है उसी अधूरे रूप में इसका प्रचार अन्य संग्रहों द्वारा भी हुआ। इस प्रकार 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' लोगों के संमुख पूरा न आ सका। अध्यापक पुंगवों के व्याख्यानों का अंश 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' में ही पड़ा हुआ है।

'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की ही रचना है, इसमें किसी को संदेह न होना चाहिए। यह रचना उन्हीं के नाम से प्रचलित है जो निराधार नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त भी कुछ और प्रमाण हैं, जिनके द्वारा यह निबंध उन्हीं द्वारा लिखा गया सिद्ध होता है। यह 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन', भाग १, संख्या ५ (फरवरी, सन् १८७४ ई०) में प्रकाशित हुआ था। उपर्युक्त पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ उनके लेखकों के नाम हैं, परंतु 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' के साथ किसी का नाम नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि यह संपादक की रचना है और संपादक थे भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र।

निबंध में कुछ ऐसे स्थल आये हैं जिनका संबंध स्पष्टतः काशी से है। काशी में कार्त्तिक मास में गंगा-स्नान, तथा अन्य धार्मिक कृत्यों का बड़ा माहात्म्य है। उसीको दृष्टि में रखकर निम्नलिखित अंश लिखा हुआ प्रतीत होता है—

...परंतु फिर भी इनकी (पंडित पाखंडप्रिय की) बुद्धि पर पूरा विश्वास है कि एक कार्तिक मास भी इनको लोग स्थिर रह जाने देंगे तो हरि कृपा से समस्त नवीन धर्मों पर चार पाँच दिन में पानी फेर देंगे।

निबंध में काशी का भी उल्लेख है—

•••हमने कल संध्या को यही पुनीत संवाद एक अँगरेजी पढ़े बंगाली महाशय से कलकत्ते और काशी के बीच में सुना था।

निबंध में कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग है जिनका प्रचार काशी की व्यावहारिक भाषा में विशेष है। जैसे, कमती, लल्लोपत्तो आदि।

इस विवेचना द्वारा निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की ही रचना है।

फिर, इस निबंध के साथ श्रीतोताराम के नाम जोड़ने का भ्रम कैसे हुआ। वस्तुतः यह भ्रम ही भ्रम है। बात यह है कि 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन', भाग १, संख्या ७ (अप्रिल, सन् १८७४ ई०) में 'स्वप्न' शीर्षक एक कथात्मक निबंध प्रकाशित हुआ है, जो 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' के ही ढंग का है। यद्यपि इसका लक्ष्य दूसरा है। उपर्युक्त पत्रिका में एक ही अंक में यह पूरा प्रकाशित नहीं हो सका, और इसके पश्चात् 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' हो गई। 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में भी यह निबंध फिर प्रकाशित हुआ नहीं दिखाई पड़ता। इस प्रकार यह अधूरा ही रह गया, ऐसा प्रतीत होता है। यद्यपि 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' में निबंध के अंत में लिखा है—'शेष आगे', 'तटस्थ', 'टु बी कंटिन्यूड'। निबंध के अंत में 'तटस्थ' क्यों लिखा गया? 'तटस्थ' का अर्थ यह हो सकता है कि इसका संबंध संपादक से नहीं है और संपादक थे भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र। 'तटस्थ' लिखने का एक अर्थ यह भी हो सकता है कि निबंध में कही गई बातों का उत्तरदायी संपादक नहीं है, क्योंकि इसमें अँगरेजों पर कड़े व्यंग्य कसे गए हैं। इस प्रकार संपादक ने अपने बचाव के लिए संभवतः ऐसा लिखा हो, जिससे उस पर सरकार की कुदृष्टि न पड़ सके। तब, 'स्वप्न' शीर्षक इस निबंध का लेखक कौन हो सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके लेखक श्रीतोताराम हैं। इसे स्वीकार कर लेने से ऐसी स्थिति तो उत्पन्न ही हो जाती है कि उन्होंने एक कथात्मक निबंध लिखा था; परंतु भ्रमवश उनका नाम उनकी रचना के साथ न जोड़ा जाकर दूसरे की रचना के साथ जोड़ दिया गया। 'स्वप्न' नामक निबंध को श्रीतोताराम का रचा हुआ मानने का सब से ठोस आधार यह है कि इसके आधे से अधिक अंश में हिंदी, फारसी, अँगरेजी, संस्कृत आदि भाषाओं की उच्चता और नीचता का अँगरेजों द्वारा ही बखान कराया गया है। और, यह सभी पर विदित है कि श्रीतोताराम हिंदी के प्रचार के लिए जी-जान से प्रयत्नशील थे। अतः उनके निबंध में भी उसकी चर्चा प्रधानतः की गई।

भारतेंदु-युग में साहित्यिक विषयों को लेकर निबंध-रचना की प्रवृत्ति उस युग के प्रायः सभी प्रमुख निबंधकारों में दिखाई पड़ती है। इसका कारण यह है कि वह युग हिंदी-साहित्य की सत्ता स्थापित करने का युग था और इसके लिए यह आवश्यक था कि उसके इतिहास, सुधार, प्रचार, उसके शास्त्रीय पक्ष का विवेचन आदि किया जाय। साहित्यिक निबंध से हमारा अभिप्राय उपर्युक्त विषयों को लेकर लिखे गए निबंधों से ही है, इसका उल्लेख किया जा चुका है। उस युग में इस प्रकार के निबंध प्रस्तुत करने में भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र, श्रीप्रतापनारायण मिश्र, श्रीबालकृष्ण भट्ट और श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का विशेष हाथ था, ये ही उस युग के प्रमुख निबंधकार थे भी।

भारतेंदु-युग में ऐतिहासिक विषयों पर निबंध प्रस्तुत करने की भी अच्छी प्रवृत्ति थी और इस क्षेत्र में भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र का कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अनेक ऐतिहासिक विषयों पर निबंध रचे हैं, जिनमें यत्र-तत्र उनकी गवेषणात्मक प्रवृत्ति के दर्शन भी मिलते हैं। उनके कुछ ऐतिहासिक निबंध ऐसे भी हैं जिनमें भारतीय प्राचीन संस्कृति का भी विचार है। इस प्रकार विदित होता है कि उस युग में ऐतिहासिक निबंधों की गतिविधि भी अच्छी रही।

भारतेंदु युग में वैज्ञानिक विषय पर लिखे गए निबंधों की प्रवृत्ति भी सुष्ठु थी और इस प्रकार के निबंधों की रचना भी समय को दृष्टि में रखकर विचार करने पर कुछ कम नहीं जान पड़ती। विज्ञान से संबद्ध सभी विषयों—रसायन, भौतिक विज्ञान, ज्योतिष आदि—पर लिखे गए लेख उस युग में मिलते हैं। उस युग में वैज्ञानिक लेख लिखनेवाले प्रधानतः तीन व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं—श्रीबिहारी चौबे, श्रीशीतलाप्रसाद तिवारी और श्रीबापूदेव शास्त्री। श्रीबिहारी चौबे के इस विषय के निबंध 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में प्रकाशित मिलते हैं, जिनमें कुछ के नाम ये हैं—'उष्मा वा गर्मी',* 'पाला-हिम-तुषार',* 'आलोक वा प्रकाश'* और 'बिजुड़ी वा तृणमणिशक्ति और चुंबक के विषय में'‡। ये सभी लेख वैज्ञानिक विषयों पर लिखे गए हैं और स्मरण रखने की बात यह है कि वैज्ञानिक विषय सदैव विवेचनासापेक्ष्य होते हैं। ऐसी अवस्था में बिना विवेचना के इस प्रकार के निबंध स्पष्ट और बोधगम्य नहीं होते। वैज्ञानिक सभी विषयों पर लिखे गए निबंधों के विषय में ऐसा ही

---

* हरिश्चंद्र मैगज़ीन, भाग १, संख्या ७, मई, १८७४ ई०।

‡ हरिश्चंद्र चंद्रिका, खंड १, संख्या ६, जून, १८७४ ई०; और
वही, खंड २, संख्या ३, दिसंबर, १८७४ ई०।

समझना चाहिए। श्रीबिहारी चौबे के उपर्युक्त सभी निबंध विवेचनापूर्ण तथा स्पष्ट हैं, उनको समझने में कोई असुविधा नहीं उपस्थित होती।

श्रीशीतलाप्रसाद तिवारी के वैज्ञानिक लेख भी 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में मिलते हैं। 'परमाणुओं का वर्णन'* शीर्षक लेख में उन्होंने परमाणुओं के रूप, उनकी पारस्परिक आकर्षण शक्ति, उष्णता के कारण उनका पृथक् होना, सभी इंद्रियगोचर पदार्थों की सृष्टि में उनका उपयोग, उनकी सूक्ष्मता आदि की विवेचना की है। लेख में विचारात्मकता तथा स्पष्टता है, जिसके कारण विषय को समझने में कहीं भी उलझन नहीं पड़ती।

श्रीबापूदेव शास्त्री के निबंध प्रायः ज्योतिष विषय पर लिखे गए हैं। 'सूर्य का बिम्ब उदय और अस्त के समय में बड़ा और मध्य में छोटा क्यों दिखता है', 'सूर्य का बिम्ब उदय और अस्त काल में नीचे की ओर चपटा दिखाता है, इसका कारण', 'भूमि के भ्रमण पर विचार'† श्रीबापूदेव शास्त्री के वैज्ञानिक लेख ऐसे ही विषय पर प्रस्तुत हैं। ...यह पृथ्वी (जिसके पृष्ठ पर हम लोग बसते हैं) किस आकार का है और इसका परिमाण कितना है और आकाश में जो ये तेजःपुंज घूमते हुए दिखाई देते हैं ये कहाँ से उदित होते हैं। इस प्रकार इनका विषय पृथ्वी और आकाश है। ये विवेचना द्वारा विषय को स्पष्ट करने में पूर्ण सफल हुए हैं। इनकी भाषा संस्कृतमयी हिंदी है।

भारतेंदु-युग निबंध-निर्माण की प्राथमिक अवस्था में ही था, फिर भी साहित्यिक कोई विषय और शैली ऐसी न थी जिस पर उस युग में निबंध न प्रस्तुत हुए हों। जिन शैलियों पर निबंध प्रस्तुत हुए उनमें अच्छी प्रौढ़ता, उपयुक्तता तथा स्पष्टता के दर्शन मिलते है। कुछ ढंग के निबंध तो उस युग में ऐसे लिखे गए जिनका महत्त्व बहुत अधिक आँका जा सकता है, इसका कारण यह है कि बाद के युगों में वैसे निबंध बहुत ही कम प्रस्तुत किए गए वा एक प्रकार से किए ही नहीं गए। यहाँ हमारा तात्पर्य आत्मव्यंजक तथा कथात्मक निबंधों से है। भारतेंदु-युग के साहित्यिक निबंधों की मनोरंजकता वा जिंदःदिली बाद के युगों के निबंधों में फिर नहीं दिखाई पड़ी। इस प्रकार भारतेंदु-युग के साहित्यिक निबंधों की जो गतिविधि वा प्रवृत्ति थी उसका अपना विशेष स्थान है।

---

* वही, खंड १, संख्या १०, जुलाई, १८७४ ई०।

† इनके ये सभी लेख कविवचनसुधा, जिल्द १, नं० २ (आश्विन, सं० १९२७ वि०) ३, ५, ७ में प्रकाशित हैं।

उस युग में ऐतिहासिक और वैज्ञानिक लेखों को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी अच्छी थी और इस प्रकार के निबंधों का जो ढंग था वह भी स्पष्ट, सुबोध और विवेचनापूर्ण था।

भारतेंदु-युग के साहित्यिक निबंधों की प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराते हुए विशिष्ट शैली और प्रकार के प्रतिनिधि निबंधकारों पर भी यत्र तत्र हमारी दृष्टि रही है। कारण यह है कि ऐसे निबंधकारों के निबंधों की विशेषताओं को दृष्टि में रखकर ही प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराया जा सकता था। कुछ ऐसे निबंधकारों के व्यक्तित्व की चर्चा भी हुई है जिनका महत्त्व विशेष नहीं आँका जा सकता, यद्यपि उनका ऐतिहासिक महत्त्व है अवश्य। वह इस दृष्टि से कि हिंदी-साहित्य में उनके विषय में अब तक पूर्ण अभिज्ञता नहीं थी। भारतेंदु-युग के प्रतिनिधि सामाजिक निबंधकारों से हम परिचित हैं। कहना न होगा कि वे ही निबंधकार उस युग के साहित्यिक निबंधकारों के भी प्रतिनिधि हैं। एक और निबंधकार इस श्रेणी में आते हैं। उनका नाम है श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय। ये वर्णनात्मक निबंधकारों के प्रतिनिधि हैं, इसकी चर्चा हम कर चुके हैं। ये प्रतिनिधि निबंध-कार एक-एक शैली के निबंध के विशिष्ट रचयिता तो हैं ही, इनका महत्त्व इस कारण तो है ही, इनका महत्त्व इस कारण भी है कि ये एक-एक शैली के निबंधों का प्रतिनिधित्व करते हुए भी सभी शैली के निबंध प्रस्तुत करने में समर्थ हैं।

भारतेंदु-युग में भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ही ऐसे निबंधकार दिखाई पड़ते हैं जिन्होंने निबंध की सभी शैलियों में रचनाएँ प्रस्तुत कीं और सफलतापूर्वक प्रस्तुत कीं। जिन भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने हिंदी-साहित्य के सभी अंगों के निर्माण और विकास का कार्य किया उन भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के लिए यह कोई विशेष कठिन कार्य नहीं। साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं समाज के क्षेत्र में भी उनकी सेवा अमूल्य है; इसे भी सभी जानते हैं। उनके सामाजिक निबंधों द्वारा यह बात स्पष्ट है, इसकी चर्चा हम कर चुके हैं। एक साथ ही समाज और साहित्य के क्षेत्र में समान रूप से कार्य करना, और महत्त्वपूर्ण कार्य करना किसी युग-पुरुष द्वारा ही संभव होता है। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र वस्तुतः युग-पुरुष ही थे। तो, भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने सभी प्रकार के साहित्यिक निबंध लिखे। भारतेंदु-युग का समाज और साहित्य साथ-साथ चलता था, कोई किसी से विमुख नहीं हुआ, किसी ने किसी की अवहेलना नहीं की। उस युग के निबंधकारों द्वारा सामाजिक निबंधों के प्रणयन का रहस्य यही है, इस पर हम विचार कर चुके हैं। उस युग के साहित्यिक निबंधों में भी निबंधकारों की दृष्टि प्रसंगात् समाज पर गई है।

अभिप्राय यह कि सामाजिक निबंधों में साहित्य की गौणता है और साहित्यिक निबंधों में समाज की गौणता, परंतु निबंधकार किसी भी श्रेणी के निबंध में समाज से विमुख नहीं दिखाई पड़ते। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के साहित्यिक निबंधों में समाज के रूप की योजना की प्रवृत्ति अत्यधिक लक्षित होती है। उस युग के अन्य निबंधकारों में यह प्रवृत्ति कुछ कम है। स्मरण रखने की बात यह है कि साहित्यिक निबंधों में समाज का चित्रण प्रसंगात् ही हुआ है। विषय के लपेट में कहीं स्पष्ट-स्पष्ट उसकी (समाज की) बातें आ गई हैं और कहीं हास्य, व्यंग्य और विनोद की शैली में। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के साहित्यिक निबंधों में समाज का चित्रण विशेषतः द्वितीय रूप में ही किया हुआ दिखाई पड़ता है। प्रथम रूप में भी इसकी योजना हुई है, पर कम। साहित्यिक निबंधों में और अन्य प्रकार की रचनाओं में भी समाज की बातों को लाने की दूसरी पद्धति बड़ी उपयुक्त और रोचक होती भी है। उपयुक्त इस दृष्टि से कि इस पद्धति द्वारा योग्य रचनाकार अधिक वस्तु थोड़े में कह सकता है और साहित्यिक निबंधों में जब समाज की बात प्रसंगात् ही लानी होती है, अर्थात् थोड़े में ही कहनी होती है, तब इस पद्धति की आवश्यकता का अनुभव सहज ही होता है। हास्य, व्यंग्य और विनोद की रोचकता और मार्मिकता के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के साहित्यिक निबंधों की प्रवृत्ति के विषय में एक और बात कहनी है। अपने देश, जाति और समाज के गौरव, उसकी रक्षा, उसमें सुधार आदि की भावना उनके साहित्यिक निबंधों में भी प्रसंगात् परोक्षतः भी और प्रत्यक्षतः भी मिलती है। उनके सामाजिक निबंधों में उपर्युक्त भावनाओं की चर्चा हम कर चुके हैं।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के विचारात्मक निबंधों में 'नाटकों का इतिहास'* नामक निबंध बड़ा प्रसिद्ध है। विषय की दृष्टि से यह बहुत ही छोटा प्रतीत होता है। नाटक-रचना का आरंभ भारतवर्ष में ही हुआ, इस निबंध का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय यही है। इसमें अभिनय के विषय में भी विचार किया गया है और बताया गया है कि इसका प्रमाण 'महाभारत' में मिलता है। नाटक संबंधी अन्य बातों की विवेचना भी इसमें है।

'संगीत'† को हम विचारात्मक निबंध न कहकर लेख ही कहेंगे। इसमें संगीत के अनेक संप्रदायों, नाट्य, वाद्य और गीति—उसके विभागों, भारत में

---

* भारतेंदु-ग्रंथावली, भाग १, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

† हरिश्चंद्रचंद्रिका, खंड २, संख्या ८-१२, सन् १८७४ ई०।

इसकी प्राचीनता और गंभीरता, संगीत के भेदोपभेद का पूर्ण वर्णन; राग-रागिणियों के भेद, किस समय कौन-सी राग-रागिणी गाई जानी चाहिए आदि का विस्तृत विवेचन है। इसको देखने से विदित होता है कि भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की पैठ संगीत के क्षेत्र में भी कितनी गहरी थी। यह तो सत्य है कि यह लेख संस्कृत-ग्रंथ के आधार पर ही लिखा गया होगा, परंतु अपनी भाषा में इसके लेखक ने अभीष्ट विषय का वर्णन और विवेचन बड़ी सरलता, सफलता और स्पष्टता के साथ किया है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के भावात्मक निबंधों में 'सूर्योदय'* बड़ा प्रसिद्ध है। यह एक लघु निबंध है, जो एक ही लंबे प्रघट्टक में लिखा गया है। इसका ढंग ठीक वैसा ही है जैसा श्रीबालकृष्ण भट्ट के 'चंद्रोदय' का है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीबालकृष्ण भट्ट को 'सूर्योदय' निबंध से ही अपने निबंध को लिखने की प्रेरणा मिली है। इन दोनों निबंधों में अनेक वस्तुओं को संमुख रखकर यह बताया गया है कि चंद्र वा सूर्य 'यह' है अथवा 'वह' है। जैसे—देखा! सूर्य का उदय हो गया। अहा! इसकी शोभा इस समय ऐसी दिखाई पड़ती है मानों अंधकार को जीतने को दिन ने यह गोला मारा है, अथवा प्रकाश का यह पिंड है वा आकाश का यह कोई बड़ा लाल कमल खिला है, वा लोगों के शुभाशुभ कर्म की खराद का यह चक्र है, अथवा चंद्रमा के रथ का पहिया है, घिसने से लाल हो गया है, अथवा काल के निर्लेप होने की सौगंद खाने का यह तपाया हुआ लोहे का गोला है…। संपूर्ण निबंध की शैली ऐसी ही है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की शैली में भावात्मकता के दर्शन तो नहीं, हाँ, काव्यात्मकता के दर्शन अवश्य होते हैं। ऊपर का उदाहरण इसका प्रमाण है। यहाँ कहा यह जा सकता है कि काव्य भी तो भावप्रेरित ही होता है, ऐसी स्थिति में इस प्रकार के निबंधों में काव्यात्मकता का आना आवश्यक है और इन्हें सच्चा भावात्मक निबंध, फिर, क्यों न कहा जाय। बात बहुत ठीक है। काव्यवाली भावात्मकता तो इस ढंग के निबंधों में मिलती है परंतु भावात्मक निबंधों में भाव का जो वेग और प्रवाह मिलना चाहिए वह नहीं दिखाई पड़ता, दिखाई भी पड़ता है तो कम निबंधों में। श्रीचतुरसेन शास्त्रीकृत अंतस्तल' के ऐसे निबंधों में भावों का वेग अच्छा है, इसके निबंध असली भावात्मक निबंधों की कोटि में आते हैं।

---

* श्रीरामचंद्र शुक्लसंपादित भारतेंदु-सुधा।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के आत्मव्यंजक निबंधों में 'कंकर स्तोत्र'※ और 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है'† विशेष उल्लेख्य हैं। इस प्रकार के निबंध के लिए विषय की तुच्छता का जो निर्धारण किया गया है वह उपर्युक्त निबंधों में है। आत्मव्यंजक निबंधों के लिए विषय की तुच्छता का प्रतिपादन भी सकारण है। इस प्रकार के निबंधों में निबंधकार की दृष्टि विषय पर अत्यल्प रहती है और आत्मोद्घाटन पर अत्यधिक। ऐसी स्थिति में उसके लिए विषय का महत्त्व कुछ विशेष नहीं रहता। कभी-कभी तो विषय की तुच्छता ही आत्मव्यंजना के लिए लंबी-चौड़ी भूमि दे देती है। जैसे, 'कंकर-स्तोत्र' नामक निबंध में कंकड़ को ही सब कुछ बनाया गया है, यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु आदिक का कर्ता भी। वस्तुतः कंकड़ में यह शक्ति नहीं है, परंतु निबंधकार उसे इन रूपों में स्वीकार ऐसा सिद्ध करता है। इसका कारण म्युनिसिपैलिटी की अव्यवस्था के प्रति उसकी खीझ की व्यंजना है। हम कहना यह चाहते हैं कि इस प्रकार के निबंधों में विषय की तुच्छता निबंधकार की आत्मव्यंजना की साधिका होती है। 'कंकर-स्तोत्र' नामक निबंध में चमत्कार, जिंदःदिली, मनोरंजकता, हास्य, व्यंग्य और विनोद सब कुछ विद्यमान है। 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है' में भी ये सभी विशेषताएं प्राप्त हैं। इस निबंध की शैली छोटे-छोटे वाक्योंवाली, प्रभावपूर्ण और खीझ से भरी है। इस निबंध का प्रतिपाद्य है अपनी विचित्र और उलटी लीला के कारण ईश्वर का विलक्षण कहा जाना। उसकी इस विलक्षणता के कारण कुछ लोग उसे भला कहते हैं और कुछ लोग बुरा। इस निबंध के आरंभ में हिंदुओं की सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य प्रकार की त्रुटियों पर भी व्यंग्य कसा गया है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के वर्णनात्मक निबंधों में कुछ ये हैं—'वसंत,'¶ 'ग्रीष्म ऋतु,'× 'वर्षा काल,'†† 'वैद्यनाथ की यात्रा,'⊙ 'सरयूपार की यात्रा,'[1]

※ हरिश्चंद्र और मोहनचंद्रिका, विद्यार्थी संमिलित, खंड ७, संख्या ६ (संवत् १९३७ वि०)

† श्रीरामचंद्र शुक्लसंपादित भारतेंदु-सुधा।

¶ हरिश्चंद्र चंद्रिका, खंड २, संख्या ३, दिसंबर, सन् १८७४ ई०।

× हरिश्चंद्र मैगजीन, भाग १, संख्या ८, मई, सन् १८७४ ई०।

†† हरिश्चंद्र चंद्रिका और मोहन चंद्रिका, विद्यार्थी संमिलित, खंड ७, संख्या ५ (संवत् १९३७ वि०)

⊙ वही, खंड ७, संख्या ४ (संवत् १९३७ वि०)

१ हरिश्चंद्र चंद्रिका, खंड ६, संख्या ८ (फरवरी १८७९ ई०)

'मेला झमेला'* और 'पाँचवें पैगंबर' † । इन निबंधों को देखने से विदित होता है कि इनका संबंध ऋतु और प्रकृति से भी है, पर्यटन से भी है और मेला आदि से भी है। अभिप्राय यह कि वर्णन के प्रायः सभी विषयों पर उनके निबंध मिलते हैं। 'पाँचवें पैगंबर' नामक निबंध भी एक प्रकार का वर्णनात्मक निबंध ही है, जिसमें सामाजिकता विशेष है। इन निबंधों में वर्णनात्मकता के साथ-साथ काव्यात्मक स्थल भी आए हैं, जो इस प्रकार के निबंधों का प्रधान गुण है, जिसके कारण हृदय की वृत्ति रमती है। जैसे—

खैर इसी सात पाँच में रात कट गई। बादल के परदों को फाड़-फाड़ कर उषा देवी ने ताक झाँक आरंभ कर दी। परलोक गत सज्जनों की कीर्ति की भाँति सूर्यनारायण का प्रकाश पिशुन मेघों के वागाडंबर से घिरा हुआ दिखाई पड़ने लगा। प्रकृति का नाम काली से सरस्वती हुआ। ठंढी ठंढी हवा मन की कली को खिलाती हुई बहने लगी। दूर से...काही रंग के पर्वतों पर सुनहरापन आ चला। कहीं आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए, कहीं एक साथ वाष्प निकलने से उनकी चोटियाँ छिपी हुई और कहीं चारों ओर से उन पर जलधारा पात से बुक्के की होली खेलते हुए बड़े ही सुहाने मालूम पड़ते थे। —[वैद्यनाथ की यात्रा]

उपर्युक्त सभी निबंधों में ऐसे ही वर्णनात्मक स्थल हैं।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र का एक ही कथात्मक निबंध—'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न'—मिलता है। इसके संबंध में पहले भी हमने विचार किया है। इस निबंध का प्रतिपाद्य है अमर होने की अभिलाषा से किसी संस्था वा पाठशाला की स्थापना। यद्यपि इस निबंध का प्रतिपाद्य यही है तथापि इसमें जो कुछ कहा गया है वह सब हास्य; व्यंग्य और विनोद की पद्धति पर। प्रतीत तो ऐसा होता है कि उपर्युक्त लक्ष्य के किसी अभिलाषी की खबर लेने के लिए ही यह निबंध प्रस्तुत किया गया है। मनोरंजकता से सारा निबंध भरा पड़ा है। इतनी मनोरंजकता, इतना हास्य, व्यंग्य और विनोद जितना कि इस निबंध में है, शायद ही भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के अन्य निबंधों में मिले। इस निबंध द्वारा उनकी जिंदःदिली का पूरा परिचय मिल जाता है। इसमें हास्य, व्यंग्य और विनोद की संभावना दो पद्धतियों से की गई है। जहाँ इनकी संभावना के लक्ष्य ये ही है वहाँ तो संभव तथा असंभव दोनों प्रकार की वस्तुओं की नियोजना द्वारा इनकी उत्पत्ति की गई है। निबंध में समय की

---

* वही, खंड ६, संख्या ११ (मई, सन् १८७६ ई०)

† हरिश्चंद्र मैगजीन, भाग १, संख्या ३ (दिसंबर, सन् १८७३ ई०)

छाप लगाने के स्थलों पर भी इनका उपयोग किया गया है। निबंध में समय की पूरी छाप है। तत्कालीन समाज की त्रुटियों पर इसमें अच्छा व्यंग्य है, विशेषतः पादरी, अँगरेज, अँगरेजों के अनुयायियों, चदाखोरों, आलोचकों आदि पर। हास्य, व्यंग्य, विनोद के कुछ स्थल देखिए—

अंत को एक मित्र के बल से अति उत्तम बात की पूँछ हाथ में लग गई।

× × ×

शेष स्त्री-शिक्षा का जो विचार था वह आज रात को घर पर पूछ लें तब कहेंगे।

× × ×

फिर पड़े पड़े पुस्तक रचने की सूझी। परन्तु इस विचार में बड़े काँटे निकले। क्योंकि बनाने की देर न होगा कि कीट 'क्रिटिक' काट कर आधी से अधिक निगल जायँगे। यश के स्थान पर शुद्ध अपयश प्राप्त होगा।

× × ×

हम अपने इष्टमित्रों की सहायता को कभी न भूलेंगे कि जिनकी कृपा से इतना द्रव्य हाथ आया कि पाठशाला का सब खर्च चल गया, और दस पाँच पीढ़ी तक हमारी संतान के लिए बच रहा।

साहित्यिक विषय पर लिखे गए भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के 'हिंदी भाषा',* 'स्यापा'† आदि निबंध हैं। साहित्यिक विषय से क्या तात्पर्य है, इसकी चर्चा की जा चुकी है। 'हिंदी भाषा' में उदाहरणों का बाहुल्य है। परंतु लेख में ऐसे स्थल भी हैं जहाँ लेखक ने विषय की स्पष्टता के लिए विचारात्मक ढंग से संक्षिप्त विवेचना की है। लेख के आरंभ में यह विवेचना कुछ लंबी है। उदाहरण वा नमूने हिंदी भाषा तथा अन्य बोलियों के भी हैं। इस लेख में भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र भाषा के तीन विभाग करते हैं—घर में बोलने की भाषा, कविता की भाषा और लिखने की भाषा। उनकी दृष्टि में कविता की भाषा ब्रज भाषा है, खड़ी बोली नहीं; क्योंकि इस खड़ी बोली में रचना करने में वे सफल नहीं हुए। उनका कहना है कि कविता में खड़ी बोली का प्रयोग इसलिए अच्छा नहीं होता कि उसकी क्रिया आदि दीर्घ मात्रा में होती है। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र लिखने की भाषा के लिए उस भाषा का उपयोग करना चाहते हैं जिसमें संस्कृत

* म० कु० श्रीरामदीन सिंह द्वारा प्रकाशित, सन् १८९० ई०; खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना।

† हरिश्चंद्रचंद्रिका, खंड १, संख्या ९, जून, सन् १८७४ ई०।

के शब्द थोड़े हों अथवा जो शुद्ध हिंदी हो। इस प्रकार यह एक अच्छा-सा विचारात्मक लेख है।

'स्यापा' एक लघु निबंध है; जिसके द्वारा भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र की हिंदी की हिमायत का परिचय मिलता है। उर्दू के किसी स्थान से निकाले जाने और उस स्थान पर हिंदी की प्रतिष्ठा होने पर यह निबंध प्रस्तुत हुआ है। इसकी शैली बड़ी मनोरंजक तथा हास्य, व्यंग्य और विनोदपूर्ण है। 'है है उर्दू हाय हाय' वाली कविता इसी निबंध के अंत में उद्धृत करने के लिए लिखी गई है। इसमें उर्दू को ऊँटनी के रूप में स्मरण किया गया है। उर्दू के हिमायती राजा शिवप्रसाद पर भी एकाध छींटा मारा गया है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने कुछ ऐतिहासिक लेख भी लिखे हैं, इसका उल्लेख किया जा चुका है। उनके कुछ ऐतिहासिक लेखों के नाम इस प्रकार हैं—'अकबर और औरंगजेब',* 'खत्रियों की उत्पत्ति',† 'रामायण का समय',‡ 'वैष्णवता और भारतवर्ष'‡‡। अंतिम दो लेखों का संबंध भारतीय प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति से विशेष है। इन दोनों लेखों से भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की गवेषणात्मक प्रवृत्ति के भी दर्शन मिलते हैं। जैसे, 'रामायण का समय' नामक लेख में यंत्र और शतघ्नी की मीमांसा के लिए 'गीता', 'महाभारत', 'मत्स्यपुराण' आदि ग्रंथों से श्लोक उद्धृत किए गए हैं। अन्य वस्तुओं के विचार के लिए भी यत्र-तत्र गवेषणात्मक शैली का उपयोग किया गया है। इस लेख का प्रतिपाद्य रामायण-काल में भारतीय रीति, नीति, आचार, व्यवहार, सभ्यता, संस्कृति आदि है। प्रसगात् इसमें आधुनिक विषयों की चर्चा भी आ गई है। जैसे, दयानंद द्वारा मूर्तिपूजा तथा अँगरेजों द्वारा भारतीय ग्रंथ, सभ्यता आदि पर आक्रमण का विरोध किया गया है। इसमें एकाध स्थल पर व्यंग्य भी है।

'वैष्णवता और भारतवर्ष' भी इसी ढंग का लेख है। इसमें भी लेखक की गवेषणात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। इस लेख का विषय है भारत में वैष्णवता का विकास तथा भारतीय समाज में विष्णु की व्यापकता। विषय की

---

* हरिश्चद्रचंद्रिका और मोहनचंद्रिका, सन् १८८० ई०।

† यह लेख हरिश्चंद्र मैगजीन के कई अंकों में प्रकाशित है।

‡ श्रीरामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित, दूसरी बार १९१६, खंगविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना।

‡‡ श्रीरामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित, तृतीय बार; १९१५; खंगविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना।

विवेचना अनेक दृष्टियों से की गई है, जिसमें वेद, उपनिषद्, पुराण तथा अन्य ग्रंथों की बातों का भी उपयोग किया गया है। इस प्रकार विदित होता है कि विद्या के क्षेत्र में भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की पहुँच बड़ी दूर तक थी। इस लेख में भी उनकी दृष्टि समाज-सुधार पर है। वे गोस्वामियों से रजोगुणी तथा तमोगुणी स्वभाव को छोड़ने के लिए निवेदन करते हैं। उनका कथन है कि गुरु में विद्या हो, जिससे उसमें शील, नम्रता आदि का उदय होगा। गुरुओं द्वारा विलासिता आदि के त्याग का सुझाव भी वे रखते हैं। मंदिरों में स्त्रियों के सहवास का वे निषेध करते हैं। उनका मत है कि गोपी, रास, आदि के रूप को समझाया जाय। ऐसे ही अन्य बातें भी वे कहते हैं, जिनके विषय में गोस्वामियों को ध्यान देना आवश्यक है।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु-युग के आत्मव्यंजक निबंधकारों के प्रतिनिधि हैं, इसका उल्लेख हो चुका है: और यहाँ यह भी समझ रखना चाहिए कि वे इस प्रकार के निबंधकारों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। उनके विषय में बात इससे कुछ आगे भी बढ़कर कही जा सकती है। वह यह कि वे भारतेंदु-युग के ही नहीं वरन् हिंदी-साहित्य के आत्मव्यंजक निबंधकारों के प्रतिनिधि हैं। साहित्य के प्रत्येक युग की अपनी-अपनी विशिष्ट देन होती है। भारतेंदु-युग ने हिंदी-साहित्य को अनेक विशिष्ट देनों से सुशोभित किया, उनमें से आत्मव्यंजक निबंध भी एक है। इस युग के पश्चात् इस ढंग के निबंधों के लिखने की चाल ही बंद हो गई। अँगरेजी के वैयक्तिक निबंधों की ठीक नकल पर वर्तमान युग में कुछ निबंध लिखे गए अवश्य, परंतु उनमें दूसरे साहित्य से नकल करने की धुन के कारण अपनापन न आ सका। भारतेंदु-युग के आत्मव्यंजक निबंधों में पूरा अपनापन है। वर्तमान युग में आत्मव्यंजक निबंधों के लिखने की ओर उन लोगों की भी प्रवृत्ति कुछ लक्षित होती है, जो हास्य के क्षेत्र में काम करते हैं, परंतु उनकी इस प्रकार की रचनाओं में हसोड़पन ही अधिक होता है, शुद्ध चमत्कार और मनोरंजकता कम। श्रीप्रतापनारायण मिश्र के आत्मव्यंजक निबंधों में जो चुलबुलापन, जो शुद्ध चमत्कार, जो जिंदःदिली, जो मनोरंजकता मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसी कारण उनके विषय में इतनी उच्च धारणा की चर्चा की जाती है। भारतेंदु-युग के आत्मव्यंजक निबंध की प्रवृत्तियों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। वे सारी प्रवृत्तियाँ श्रीप्रतापनारायण मिश्र के निबंधों पर लागू की जा सकती हैं। निबंध के प्रकार की दृष्टि से इनके निबंधों के विषय का चुनाव तथा उनकी शैली का ग्रहण बड़ा ही औचित्यपूर्ण है। इनके निबंधों के विषय प्रायः बड़े सामान्य हैं, जिनमें आत्मव्यंजना के लिए पूरा अवकाश और अवसर रहता है। इनकी शैली भी

बड़ी सामान्य है, उसमें कोई जटिलता नहीं है। वह ऐसी है कि जिसके द्वारा श्रीप्रतापनारायण मिश्र की विनोदशीलता तथा उनके अक्खड़पन का पूरा चित्र संमुख आ उपस्थित होता है।

यद्यपि श्रीप्रतापनारायण मिश्र प्रधानतः आत्मव्यंजक निबंधकार ही हैं तथापि उन्होंने कुछ निबंध ऐसे भी लिखे हैं जो साहित्यिक कोटि के विचारात्मक निबंध हैं। 'काल', 'युवावस्था,' 'शिवमूर्ति'* आदि निबंध इसी कोटि के हैं। इस प्रकार के निबंधों में विषय का प्रतिपादन विवेचनात्मक पद्धति पर किया गया है, जिसके द्वारा विषय में पूरी स्पष्टता तथा बोधगम्यता आ गई है। श्रीप्रतापनारायण मिश्र के सामाजिक निबंधों की चर्चा की जा चुकी है। उन्होंने साहित्यिक शैली के भी जितने निबंध लिखे हैं उन में भी प्रसंगात् सामाजिकता की छाप है। 'काल' नामक निबंध में कहा गया है कि देश की दुःखावस्था पर दृष्टि रखनेवालों को काल की परिवर्तनशीलता भी स्मरण रखनी चाहिए। 'युवावस्था' शीर्षक निबंध में कहा गया है कि युवकों को काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मात्सर्य इन छह रिपुओं को बुरे मार्ग पर न लगाकर देश, जाति तथा धर्म के हेतु लगाना चाहिए। इस प्रकार विदित होता है कि साहित्य-पक्ष पर दृष्टि रखते हुए भी इनकी दृष्टि देश और जाति पर थी।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र के आत्मव्यंजक निबंधों को विषय-प्रतिपादन की शैली की दृष्टि से स्थूलतः दो श्रेणियों में रख सकते हैं। एक तो वह श्रेणी है जिस श्रेणी के निबंधों के प्रतिपादन में चुलबुलापन का आधिक्य है; और दूसरी वह श्रेणी जिसके निबंधों के प्रतिपादन में चुलबुलापन की कमी तथा गांभीर्य का आधिक्य है। स्मरण रखने की बात यह है कि यह उनके निबंधों का स्थूल विभाजन ही है, क्योंकि दोनों श्रेणियों की विशेषताएँ न्यूनाधिक रूप में एक दूसरे में मिल सकती हैं। पहली श्रेणी में आनेवाले निबंध हैं—'आप', 'बात', 'भौं', 'नारी', 'सोना'* आदि। दूसरी श्रेणी में आनेवाले निबंध ये हैं—'धोखा', 'वृद्ध', 'खुशामद', 'दाँत', 'बालक', 'परीक्षा'† आदि। प्रथम श्रेणी के ही अंतर्गत उनके वे निबंध भी आएँगे जो अक्षरों पर लिखे गए हैं, जैसे 'द' और 'ट' पर लिखे गए निबंध। प्रतिपादन का चुलबुलापन और गांभीर्य की दृष्टि से ही इन निबंधों के बीच भेद की सीमा-रेखा खींची जा सकती है, अन्यथा इन दोनों प्रकार के निबंधों में प्रायः सामान्य विशेषताएँ लक्षित

* ये निबंध श्रीप्रतापनारायण मिश्रकृत निबंध-नवनीत में प्रकाशित हैं।
† इन दोनों श्रेणियों के निबंध श्रीप्रतापनारायण मिश्रकृत निबंध-नवनीत में प्रकाशित हैं।

होती हैं। 'आप' को प्रथम श्रेणी के निबंधों का प्रतिनिधि तथा 'धोखा' को द्वितीय श्रेणी के निबंधों का प्रतिनिधि मान कर विचार कर लेने पर इनकी सारी विशेषताएँ स्पष्ट हो जायँगी।

'आप'-श्रेणी के निबंधों की प्रधान विशेषता का उल्लेख हो चुका है। अर्थात् उनमें प्रतिपादन का हलकापन (लाइटनेस ऑव् ट्रीटमेंट) वा चुलबुलापन है। कहीं भी ऐसा स्थल नहीं आता जहाँ पाठक वा श्रोता को कुछ बौद्धिक श्रम का अनुभव करना पड़े। वह निबंध की प्रायः सभी बातों का ग्रहण उसी रूप में करता है जिस रूप में मनोरंजन की वस्तुओं का ग्रहण। स्मरण रखने की बात यह है कि उसमें साहित्यिक रुचि होने की शर्त अवश्य रखी जा सकती है। इस श्रेणी के निबंधों में भी विचारात्मक स्थल आए हैं, परंतु वे बुद्धि पर बोझ रखते हुए-से नहीं प्रतीत होते। जैसे, 'आप' शीर्षक निबंध का यह स्थल—अब तो आप समझ गए होंगे कि आप कहाँ के हैं, कौन हैं, कैसे हैं, यदि इतने बड़े बात के बतंगड़ से भी न समझे हों तो इस छोटे से कथन में हम क्या समझा सकेंगे कि 'आप' संस्कृत के आप्त शब्द का हिंदी रूपांतर हैं, और माननीय अर्थ के सूचनार्थ उन लोगों (अथवा एक ही व्यक्ति) के प्रति प्रयोग में लाया जाता है जो सामने विद्यमान हों चाहे बातें करते हों, चाहे बात करनेवालों के द्वारा पूछे बताए जा रहे हों, अथवा दो वा अधिक जनों में जिनकी चर्चा हो रही हो।

ये निबंध आत्मव्यंजक हैं। अतः इनमें आत्मव्यंजकता का प्राधान्य है, विचारात्मकता का नहीं। ऐसी स्थिति में जिन विषयों पर ये लिखे जायँ उनकी वैज्ञानिक छानबीन हो सकेगी अथवा नहीं, इसमें पूरा संदेह ही है। बात तो यह है कि इनके द्वारा तथ्य-प्रकाश होता नहीं है। 'आप' (सर्वनाम) पर विचार करते हुए एक स्थान पर लिखा गया है—इस प्रकार पानी की ज्येष्ठता और श्रेष्ठता का विचार करके लोग पुरुषों को भी उसी के नाम से आप पुकारने लगे होंगे। इस विचार में कितना तथ्य है, यह नहीं कहा जा सकता। विचार में वैज्ञानिकता हो वा न हो परंतु किसी विषय को लेकर उसके प्रतिपादन का प्रयत्न अवश्य ही श्लाघ्य है। निःसंदेह श्रीप्रतापनारायण मिश्र में प्रतिपादन की बड़ी ही गहरी शक्ति के दर्शन होते हैं।

'आप'—श्रेणी के निबंध आत्मव्यंजना-प्रधान हैं। अतः विषयांतर द्वारा निबंधकार ने ऐसे स्थल भी निकाले हैं जहाँ उसे अपने को व्यक्त करने का अवसर मिले। इसी कारण निबंधकार सर्वनाम 'आप' पर विचार करते हुए संस्कृत भाषा तक जाता है; और कुत्ते, बिल्ली की बोली तक भी पहुँचता है।

'आप'-श्रेणी के निबंधों की प्रायः वैसी ही शैली है जैसी वार्तालाप की होती है। 'आप' शीर्षक पूरे निबंध में प्रश्नोत्तर की निहिति इसका प्रमाण है। यह अवश्य है कि निबंधकार ही प्रश्नकर्ता तथा उत्तरदाता दोनों है।

इस श्रेणी के कुछ निबंध ऐसे हैं जिनमें आत्मव्यंजक निबंध की विशिष्टताओं के साथ ही मुहावरों के चमत्कार-प्रदर्शन का भी प्राधान्य है। ऐसे निबंधों में निबंधकार मुहावरों विषयक अपनी जानकारी दिखाने की ओर ही विशेष उन्मुख जान पड़ता है। 'बात' शीर्षक निबंध का यह स्थल देखिए—इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात खुलती है, बात छिपती है, बात चलती है, बात अड़ती है, बात जमती है, बात उखड़ती है, हमारे-तुम्हारे भी सभी काम बात ही पर निर्भर हैं। यहाँ विरोधी क्रियाओं द्वारा बने 'बात'-सबंधी मुहावरों के सग-सग उल्लेख से अच्छा चमत्कार उत्पन्न हुआ है। 'भौं' शीर्षक निबंध में भी यह प्रवृत्ति लक्षित होती है।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र के इस श्रेणी के निबंध भी समय की छाप से नहीं बच सके हैं। उनमें भी तत्कालीन देश-काल की चर्चा हुई है। जैसे, 'भौं' शीर्षक निबंध में देश के व्यक्तियों का ध्यान अपनी भाषा, अपने धर्म, धन, बल, व्यापार आदि की ओर आकृष्ट किया गया है।

'द' और 'ट' पर लिखे गए निबंधों को भी उनकी समान प्रवृत्तियों के कारण 'आप' श्रेणी के निबंधों में ही रखा गया है। इन निबंधों द्वारा 'द' और 'ट' युक्त शब्दों को लेकर विषय-प्रतिपादन का चमत्कार लक्षित होता है। इन निबंधों की प्रधान विशेषता है इनमें तत्कालीन देश-काल की निहिति। ऐसा करते हुए निबंधकार की दृष्टि अँगरेजों की मरंमत करने पर अच्छी है।

इसका उल्लेख किया जा चुका है कि 'आप' तथा 'धोखा'–श्रेणी के निबंध समान ही प्रवृत्ति धारण करते हैं। यदि इनमें कोई भेद है तो यही कि 'धोखा' श्रेणी के निबंधों में विचारात्मकता का कुछ आधिक्य है। ऐसी स्थिति में 'आप'-श्रेणी के निबंधों की जिन विशेषताओं की विवेचना ऊपर हुई है वे सभी 'धोखा'-श्रेणी के निबंधों में विद्यमान हैं। इस श्रेणी के किसी भी निबंध में वे देखी जा सकती हैं। समय की छाप, मुहावरों का चमत्कार, आत्मव्यंजकता, प्रतिपादन की शक्ति, वार्तालाप की शैली आदि सभी प्रवृत्तियाँ इस श्रेणी के निबंधों में भी मिलती हैं। 'धोखा'-श्रेणी के निबंधों में इन प्रवृत्तियों के साथ ही विचारात्मकता वा गांभीर्य का कुछ आधिक्य है। इस 'कुछ' शब्द पर दृष्टि रखनी आवश्यक है। इस विचारात्मकता वा गांभीर्य की निहिति का कारण है

इनमें निबंधकार की दृष्टि का विषय प्रतिपादन की ओर कुछ अधिक होना। ऐसी अवस्था में इस श्रेणी के प्रायः निबंध ऐसे दृष्टिगत होते हैं जिनमें तथ्य-प्रकाश की मात्रा अधिक है। 'आप'-श्रेणी के निबंधों में वैज्ञानिक तथ्य-प्रकाश पर निबंधकार की दृष्टि बहुत ही कम लक्षित होती है, इस पर विचार हो चुका है। 'धोखा' श्रेणी के निबंधों में विषयानुकूल तथ्य-प्रतिपादन में निबंधकार की दो शैलियों के दर्शन स्पष्टतः होते हैं। एक शैली में तो सच्ची विवेचनात्मकता के दर्शन होते हैं और दूसरी में युक्ति और कौशल के दर्शन। प्रथम शैली के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। द्वितीय शैली का प्रमाण 'धोखा' शीर्षक निबंध है। इसमें निबंधकार ने सयुक्ति और सकौशल यह प्रतिपादित किया है कि इस संसार में जो कुछ है सब धोखा है। और, उसने इस ढंग से विषय का प्रतिपादन किया है कि प्रायः सभी बातें मान्य हो सकती हैं। इस प्रकार 'धोखा'-श्रेणी के निबंधों में गांभीर्य की निहिति के कारण स्पष्ट हैं। 'धोखा' शीर्षक निबंध में तो गांभीर्य का कारण यह है कि इसमें प्रायः ईश्वर, जीव तथा जगत् की चर्चा आ गई है। इस कारण इनके विषय में निबंधकार को कुछ दार्शनिक बातें भी कहनी पड़ी हैं, जिनके कारण कुछ गांभीर्य स्वभावतः आ गया है। परंतु गांभीर्य इतना नहीं आ गया है कि निबध बोझिल हो उठा हो।

श्रीबालकृष्ण भट्ट भारतेंदु-युग के विचार प्रधान निबंधकारों के प्रतिनिधि हैं—कई दृष्टियों से। एक तो इनके निबंधों में विचारात्मक निबंधों का आधिक्य है, दूसरे विषय का चुनाव विचारात्मक है, तीसरे शैली विवेचनामयी है और चौथे इनके निबंधों में अधिक निबंध ऐसे हैं जिनका संबंध मनोविकारों से है, जिनके प्रतिपादन में विवेचना की आवश्यकता पड़ती है। श्रीबालकृष्ण भट्ट द्वारा विचार-प्रधान निबंधों की रचना का कारण भी है। इनका सारा जीवन अध्ययन-मनन और अध्यापन में ही व्यतीत हुआ; उसमें भी संस्कृत-साहित्य के अध्ययन-मनन और अध्यापन में। ये संस्कृत के अच्छे पंडित थे। संस्कृत-साहित्य के अध्ययन-मनन की छाप इनके निबंधों पर भी पड़ी, जिसके कारण निबंधों में विचारात्मकता का प्राधान्य वा आधिक्य होना स्वाभाविक है। तात्पर्य यह कि इनके निबंधों में गांभीर्य के प्राधान्य का कारण विद्या की ओर इनकी विशेष प्रवृत्ति का होना है। इसका प्रमाण इनके निबंधों की विचारशीलता तो है ही, उनमें भारतीय तथा संस्कृत-साहित्य के उद्धरण और उदाहरण भी इसके प्रमाण हैं।

यथास्थल इसका उल्लेख हुआ है कि भारतेंदु-युग के निबंधकारों में किसी वस्तु वा विषय को लेकर हठधर्मिता की प्रवृत्ति नहीं लक्षित होती। उनमें विचारों

की उदारता अत्यधिक मात्रा में थी। वह युग ही उदार प्रवृत्तियों का था। हम कहना यह चाहते हैं कि श्रीबालकृष्ण भट्ट की प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति और साहित्य की ओर विशेष होते हुए भी अन्य देश के साहित्यों से पराङ्मुख न थी। अँगरेजी ~~साहित्य की अनुरूपी~~ वस्तुओं तथा उस भाषा के शब्दों का प्रयोग भी वे निःसंकोच भाव से करते थे। उनके निबंधों को देखने से यह बात स्पष्टतः लक्षित होती है। भारतेंदु-युग के निबंधकारों में से अँगरेजी शब्दों का अत्यधिक प्रयोग करनेवाले श्रीबालकृष्ण भट्ट ही दिखाई पड़ते हैं। अँगरेजी शब्दों के प्रयोग का तात्पर्य यह है कि ये शब्द कोष्ठकों में रहते थे और इनके हिंदी पर्यायवाची बाहर। अँगरेजी शब्दों के हिंदी-पर्याय-निर्धारण में तब और अब में कुछ अंतर दिखाई पड़ता है। उस समय बहुत से ऐसे शब्द निर्धारित किए जाते थे जो आज उतने उपयुक्त नहीं समझे जाते। जैसे, श्रीबालकृष्ण भट्ट ने 'जातीयता' का प्रयोग 'नेशनैल्टी' के अर्थ में किया है और आज 'नेशनैल्टी' से 'राष्ट्रीयता' का मतलब लिया जाता है। आज 'जातीयता' से 'कम्युनलिज्म' का अर्थ ध्वनित होता है। बँगला में 'जातीयता' का प्रयोग 'राष्ट्रीयता' के अर्थ में अब भी होता है। 'नेशनैल्टी' के लिए 'राष्ट्रीयता' शब्द का प्रयोग हिंदी में सबसे पहले काशी के दैनिक समाचार पत्र 'आज' में हुआ; तब भी इसके संपादक श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर थे। अस्तु। ऐसे ही बहुत से अँगरेजी शब्द हैं, जिनका उस समय का हिंदी-पर्याय कुछ और था और आज कुछ और है। एक बात और कहनी है। लोगों की धारणा प्रायः यह है कि हिंदी में अँगरेजी शब्दों के प्रयोग—हिंदी-पर्याय सहित—का आरंभ द्विवेदी-युग में हुआ—अँगरेजी पढ़े-लिखे लोगों को हिंदी की ओर उन्मुख करने के लिए। परंतु बात ऐसी नहीं जान पड़ती। भारतेंदु-युग से ही अँगरेजी शब्दों के प्रयोग की अच्छी चाल दिखाई पड़ती है।

यह कहा गया है कि श्रीबालकृष्ण भट्ट विचारात्मक निबंधकारों के प्रतिनिधि हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन्होंने अन्य शैली के निबंध लिखे ही नहीं। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के पश्चात् ये ही एक ऐसे निबंधकार दृष्टिगत होते हैं जिन्होंने सभी प्रकार के निबंधों की रचना की है और भलीभाँति सफल भी हुए हैं। विचारात्मक निबंधकारों का प्रतिनिधित्व तो किया ही है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के विचारात्मक निबंध सामान्यतः तीन कोटि के मिलते हैं। प्रथम कोटि उन निबंधों की है जिनके विषय व्यावहारिक और जीवन से संबद्ध हैं; परंतु वे जिस पद्धति पर लिखे गए हैं वह विवेचनात्मक और साहित्यिक है। अभिप्राय यह कि शैली के कारण वे साहित्यिक और विवेचनात्मक कोटि

के निबंधों में आते हैं। इस कोटि के कुछ निबंध ये हैं—'माता का स्नेह', 'आँसू', 'लक्ष्मी', 'कालचक्र का चक्कर' आदि। द्वितीय कोटि उन निबंधों की है जिनके विषय का संबंध भी साहित्य से है और जिस शैली में वे लिखे गए हैं वह भी साहित्यिक और विवेचनात्मक है। इस प्रकार इस कोटि के निबंध विषय तथा शैली दोनों दृष्टियों से साहित्यिक हैं। इस कोटि के कुछ निबंधों के नाम हैं—'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकाश है', 'कवि और चितेरे की डाड़ामेड़ी', 'शब्द की आकर्षण शक्ति', 'प्रतिभा', 'माधूर्य', 'साहित्य का सभ्यता से घनिष्ठ संबंध है' आदि। द्वितीय कोटि के निबंधों में भी स्पष्टतः दो प्रकार लक्षित होते हैं। इसमें कुछ निबंध तो ऐसे हैं जिनका संबंध विशुद्ध साहित्य वा साहित्य-शास्त्र से है और कुछ ऐसे हैं जिनका संबंध मुख्यतः साहित्य के व्यावहारिक रूप से है। 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकाश है', 'साहित्य का सभ्यता से घनिष्ठ संबंध है' आदि निबंध इसी प्रकार के हैं। 'कवि और चितरे की डाड़ामेड़ी', 'शब्द की आकर्षण शक्ति', 'प्रतिभा', 'माधूर्य' आदि निबंध विशुद्ध साहित्य वा साहित्य-शास्त्र से संबद्ध हैं। इसी कारण इन निबंधों में विशुद्ध समीक्षा की विशेष सामग्री प्राप्त होती है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के विचारात्मक निबंधों की तृतीय कोटि के अंतर्गत वे निबंध आएँगे जो हृदय वा बुद्धि की वृत्तियों वा मनोविकारों पर लिखे गए हैं। 'चरित्रपालन', 'चारुचरित्र', 'आत्मनिर्भरता', 'जवानी की उमंगें', 'आशा', 'आत्मगौरव', 'स्थिर अध्यवसाय या दृढ़ता', 'सुख दुःख का अलग अलग विवेचन', 'रुचि', 'भिक्षावृत्ति', 'दृढ़ और पवित्र मन', 'परचित्तानुरंजन', 'निवृत्ति', 'खटका', 'विश्वास', 'बोध, मनोयोग और युक्ति', 'सुख क्या है ?' आदि निबंध इसी प्रकार के हैं। भारतेंदु-युग के निबंधों की सामान्य प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए मनोविकारों पर लिखे गए निबंधों के विषय में कुछ विचार किया जा चुका है। यह कहा जा चुका है कि नित्यप्रति के जीवन में मनोविकारों वा मन और हृदय की वृत्तियों का जो रूप संमुख आता है, इन निबंधों में उसी व्यावहारिक रूप का वर्णन है। अभिप्राय यह कि इस प्रकार के निबंधों के विचार का आधार प्रधानतः व्यावहारिक जीवन ही है। व्यावहारिक जीवन में मनोविकारों का जो रूप हमारे संमुख प्रायः आया करता है केवल उन्हीं का विचार इनमें किया गया है। इन मनोविकारों की मूल प्रवृत्ति की सारगर्भित विवेचना के पश्चात् इनके व्यावहारिक रूप का वर्णन उपर्युक्त निबंधों में नहीं मिलता है जैसा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोविकारों पर लिखे गए निबंधों में प्राप्त है। इसीलिए यह कहा गया है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इस प्रकार

के निबंधों की ये भूमिका मात्र हैं, उनके विकास के आरंभिक रूप ही हैं। इस मीमांसा के साथ ही यह भी कह देना आवश्यक है कि श्रीबालकृष्ण भट्ट के इस प्रकार के निबंधों में यत्र-तत्र ऐसे स्थल भी लक्षित होते हैं जहाँ उनकी दृष्टि मनोवृत्तियों के मूल रूप की विवेचना पर भी है। 'आशा' आदि निबंध इसी ढंग के हैं। इन निबंधों में से कुछ ऐसे हैं जिनमें कुछ आत्मव्यंजकता और मनोरंजकता का भी पुट है। 'रुचि' आदि ऐसे ही निबंध हैं। कुछ ऐसे भी हैं जिनमें सामाजिकता का पुट विशेष है। जैसे, 'भिक्षावृत्ति' में। यह कहा जा चुका है कि भारतेंदु-युग में मनोविकारों पर कुछ ऐसे निबंध भी लिखे मिलते हैं, जिनका लक्ष्य शिक्षा देना है। श्रीबालकृष्ण भट्ट के भी कुछ ऐसे निबंध हैं। जैसे. 'चरित्रपालन', 'चारु चरित्र', 'आत्मनिर्भरता', 'जवानी की उमंगें' आदि निबंध।

ये विचारात्मक निबंध जिनकी चर्चा ऊपर हुई है ऐसे निबंधकार द्वारा लिखे गए हैं जिसका अध्ययन-मनन विस्तृत और गांभीर्य था। ऐसी स्थिति में इन निबंधों की शैली में विचारशीलता और गंभीर है। इनमें संस्कृत के उद्धरण और उदाहरण भी बहुलता से मिलते हैं। इन निबंधों के रचयिता विचार-शील और अध्ययनशील व्यक्ति थे, अतः इनमें विचारों की मौलिकता भी प्रायः मिलती है। अभिप्राय यह कि जिस विषय के संबंध में सामान्यतः जो विचार प्रचलित हैं उन विचारों के अतिरिक्त कुछ निबंधकार के अपने विचार भी इन निबंधों में विद्यमान हैं। भारतेंदु-युग में कुछ निबंधकार ऐसे भी हुए जिनमें शैली आदि की दृष्टि से विशिष्ट तो लक्षित होती है परंतु उनके विचार प्रायः वैसे ही हैं जैसे सामान्यजन में प्रचलित हैं। श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय ऐसे ही निबंधकार दिखाई पड़ते हैं। श्रीबालकृष्ण भट्ट के निबंधों में शैलीगत अपना-पन तो है ही।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के भावात्मक निबंधों में 'चंद्रोदय' बड़ा प्रसिद्ध है। यह उनके भावात्मक निबंधों का प्रतिनिधि भी है। प्रायः सभी निबंधकारों के कुछ निबंध ऐसे मिलते हैं जिनमें 'कला कला के लिए' वाला सिद्धांत पूर्णतः लागू होता है। ऐसे निबंधों में निबंधकार की दृष्टि अपनी साहित्यिक चातुरी प्रदर्शित करने की ओर अवश्य लक्षित होती है। चातुरी-प्रदर्शन के लिए वाणी के चम-त्कार का अवलंबन करना स्वाभाविक है। इस कारण ऐसे निबंधों में काव्यात्मकता आ गई है। 'चंद्रोदय' ऐसा ही निबंध है। इस प्रकार के निबंधों में भावा-त्मकता की निहिति का तात्पर्य यह नहीं है कि बेकार की ऊलजलूल बातों का समावेश किया जाय, जिनका संबंध निबंध के विषय से कुछ भी न हो। भावा-

त्मक निबंधों में भी यह देखा जाता है कि निबंधकार निबंध के विषय का प्रतिपादन अवश्य करता है और निबंध का सर्वप्रमुख तत्त्व प्रतिपादन ही है। हाँ, यह प्रतिपादन भावात्मक शैली के सहारे अवश्य होता है। स्मरण रखने की बात यह है कि भावात्मक निबंधों में भावात्मकता की प्रधानता रहती है, अर्थात् विचारात्मकता की नियोजना भी उसमें होती है, परंतु गौण रूप से। श्रीबालकृष्ण भट्ट के 'चंद्रोदय' शीर्षक निबंध में तो आद्योपांत भावात्मकता है। 'पौगंड वा कैशोर' और 'मुग्धमाधुरी' उनके ऐसे निबंध हैं जिनमें भावात्मकता के साथ-साथ विचारात्मकता भी है। 'मुग्धमाधुरी' में यत्र-तत्र विचारशीलता के साथ ही प्रधानता ऐसे स्थलों की है—

रूप की इस मुग्धमाधुरी का कुछ क्रम ही निराला है कि जो मुखच्छवि रेख भीनते भीनते पूनों के चाँद सी सोहती थी वही जवानी के आते ही मोछों की कालिमा से कलुषित हो सेवार के जाल से ढँपे हुए कमल की शोभा धर लेती है।

'कल्पना-शक्ति', 'जी', 'नाक', 'द' आदि आत्मव्यंजक निबंध भी श्रीबालकृष्ण भट्ट द्वारा प्रस्तुत हुए हैं। ये निबंध ठीक वैसे ही हैं जैसे आत्मव्यंजक निबंधकारों के प्रतिनिधि श्रीप्रतापनारायण मिश्र के आत्मव्यंजक निबंध। आत्मव्यंजकता, मनोरंजकता, अक्षर, शब्द और मुहावरों को लेकर चमत्कार-प्रदर्शन, प्रतिपादन की शक्ति और पटुता, समय की छाप आदि सभी तत्त्व उपर्युक्त निबंधों में प्राप्त होते हैं। अभिप्राय यह कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र के आत्मव्यंजक निबंधों की जो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं वे ही श्रीबालकृष्ण भट्ट के आत्मव्यंजक निबंधों की भी। उनके इस श्रेणी के निबंधों को देखने से विदित होता है कि यद्यपि वे भारतेंदु-युग के विचारात्मक निबंधकारों के प्रतिनिधि थे और इसी क्षेत्र में उनका कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण रहा तथापि उनमें जिंदःदिली की मात्रा किसी भी प्रकार कम नहीं थी।

श्रीबालकृष्ण भट्ट का 'कल्पना-शक्ति' नामक निबंध श्रीप्रतापनारायण मिश्र के 'धोखा'-कोटि के निबंधों के ढंग का है। यह एक लघु निबंध है। एक उद्धरण द्वारा इसकी सारी प्रवृत्तियाँ लक्षित हो जायँगी—

यावत् मिथ्या और दरोग की किबलेगाह इस कल्पना पिशाचिनी का कहीं ओर छोर किसी ने पाया है! अनुमान करते करते हैरान गौतम से मुनि 'गोतम' हो गए। कणाद किनका खा खा कर तिनका बीनने लगे पर मन की मनभावनी कन्या, कल्पना, का पार न पाया। कपिल बेचारे पचीस तत्त्वों की कल्पना करते करते "कपिल" अर्थात् पीले पड़ गए।

व्यास ने इन तीनों महादार्शनिकों की दुर्गति देख मन में सोचा कौन इस भूतनी के पीछे दौड़ता फिरे, यह संपूर्ण विश्व जिसे हम प्रत्यक्ष देख सुन सकते हैं सब कल्पना ही कल्पना, मिथ्या, नाशवान और क्षणभंगुर है; अतएव हेय है।...

'जी' और 'नाक' भी 'कल्पना-शक्ति' की भाँति ही लघु निबंध हैं। 'जी' नामक निबंध में 'जी' शब्द के प्रयोग की व्यापकता का वर्णन है। 'जी' शब्द के सहारे चमत्कार भी खड़ा किया गया है। 'जी' के मुहावरों का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। 'नाक' नामक निबंध में निबंधकार की दृष्टि नाक के मुहावरों पर विशेष है। इसमें यत्र-तत्र सामाजिकता के दर्शन भी होते हैं। ये निबंध श्रीप्रतापनारायण मिश्र के 'आप'—कोटि के निबंधों के अंतर्गत रखे जा सकते हैं। इनमें मनोरंजकता की अधिकता और विचारात्मकता की अल्पता है। जैसे—

साधारण बातचीत में यह जी भी जी का जंजाल सा हो रहा है। अजी बात ही चीत क्या जहाँ और जिसमें देखो उसी में इस जी से जीते जी छुटकारा नहीं देख पड़ता। साहब यह आप क्या कहते हैं जी से जी को राहत है; जी मत चुराओ हम जो कहें उसे सुनते चलो और इस जी की उलझी गांठ सुलझाते जाओ।

× × ×

"नाक निगोड़ी भी क्या ही बुरी बला है जिसके नहीं तो उसका फिर जीना ही क्या। कहावत है 'नकटा जिया बुरे हवाल'। है तो न जानिए क्या-क्या फसाद बरपा करती जरा जरा सी बात में इसके कट जाने का डर लगा रहता है। नित्य के भोजनाच्छादन में बड़े संकुचित भाव से रहते हैं, निहायत तंग दस्त फटे हाल से ज़िंदगी पार कर रहे हैं यहाँ लों कि पेट भर खाते तक नहीं मोटा झोटा पहिन रूखा सूखा खा पी किसी तरह गुजारा करते हैं पर नाक की जगह राज़ा करन से उदार हो जी खोल शाह खर्च बन बैठते हैं। पास न हुआ तो कर्ज़ अपने ऊपर लाद लेते हैं वर्षों तक वरन ज़िंदगी भर ऋण से उद्धार नहीं पाते पर बिरादरी और पंच के बीच नाक नहीं कटने देते। गरदन कट जाओ बला से पर नाक न कटने पावे। चोखे लोग आन वाले नाक पर रख देते हैं पर हेठा नहीं सहते। भगवान् ऐसों के नाक की लाज रख भी देता है।......।

कहना न होगा कि इन निबंधों में भी भावात्मक निबंधों की भाँति निबंधकार की दृष्टि चमत्कार-प्रदर्शन पर विशेष लक्षित होती है। अतः 'कला के लिए कला' वाला सिद्धांत इनके विषय में भी लागू किया जा सकता है।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र की भाँति श्रीबालकृष्ण भट्ट ने भी अक्षरों पर निबंध लिखे हैं। 'द' शीर्षक निबंध में शब्दों में 'द' अक्षर की व्यापकता का वर्णन है। इसमें भी मुहावरों का प्रयोग अच्छा है। समय की छाप भी इस निबंध में है। जैसे, इसमें एक स्थल पर यह दिखाया गया है कि हिंदू लोग दास रहने के अच्छे आदी हैं। अँगरेजों पर भी इसमें व्यंग्य है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के वर्णनात्मक निबंधों में 'प्रेम के बाग का सैलानी' और 'संसार-महानाट्यशाला' उल्लेख्य हैं। प्रथम निबंध में प्रेम का महत्त्व गाया गया है। द्वितीय निबंध का प्रतिपाद्य यह है कि ईश्वर हम सभी को अपने मन के अनुसार नचा रहा है। इन निबंधों का शीर्षक रूपकात्मक है, अतः इनमें रूपक बाँधने का प्रयत्न है। ये निबंध वर्णनात्मक हैं। ऐसी स्थिति में इनमें निबंधकार की वृत्ति वर्णनात्मक स्थलों पर प्रायः रमती हुई चलती है, इस कारण इन निबंधों में काव्यात्मक स्थल भी आए हैं। इन उदाहरणों से बात स्पष्ट हो जायगी—

'प्रेम का बाग' यह हम इसलिए कहते हैं कि इस बाग में सब भाँति प्रेम ही प्रधान है। प्रेम ही इस बाग का माली है, प्रेम ही की सुगंधित कली हृदय के आलबाल में खिल इस बगीचे के सैलानी को प्रमुदित करती है। इस प्रेमवृत्ति की जड़ बहुत नीचे है। इसकी प्रस्फुटित कली वियोग की एकांत चिंता ओस से सिंचित हो मुरझाने पर भी अपनी महक नहीं छोड़ती किंतु बार बार की सुधरूपी प्रातःसमीरण से अधिक अधिक पुष्ट बढ़ती जाती है और अपने प्रेमी से मिलने की प्रखर इच्छा के सूर्योदय से इस कली की आशारूपी पखुरियाँ खुलती जाती हैं।

× × ×

स्वभावमधुराकृति प्रकृति उस महा सूत्रधार की सहचारिणी नर्तकी इस नाट्यशाला की नटी है। पृथक् पृथक् नाम रूप में विचित्र वेषधारी जीव समूह सब उस बड़े नटनागर की नाट्यशाला के सहकारी नट हैं।

श्रीबालकृष्ण भट्ट का एक ही कथात्मक निबंध मिल पाया है। उसका नाम है 'एक अनोखा स्वप्न'। इस निबंध का प्रतिपाद्य यह है कि इस संसार में किसी भी देश के प्राणी सुखी नहीं हैं। चाहे वे धनी देश के हों चाहे निर्धन देश के। जो धनी हैं वे अपने धन के कारण दुःखी हैं और जो निर्धन हैं वे तो कष्ट में हैं ही। धनिकों के दुखी होने का कारण यह है कि धन के कारण उनमें अविद्या का संचार हो जाता है। अविद्या का आक्रमण उन पर अकेले नहीं होता। वह अपने अन्य सखा-सखी दुर्गुणों को साथ लेकर उन पर धावा बोलती

है, जिनके कारण धन के रहते हुए भी वे कष्टमय जीवन व्यतीत करते हैं। निबंध में देश-काल के भी चित्र मिलते हैं। जैसे, एक स्थान पर अविद्या धनिकों के लिए कहती है कि ये सभी ब्रिटिश-सिंह के पंजे में हैं और उसकी खुशामद किया करते हैं। ऐसे ही अन्य स्थल भी आए हैं जिनके द्वारा तत्कालीन समाज के रूप-दर्शन होते हैं। निबंध में देश-प्रेम की पूरी छाप लक्षित होती है। भारतवर्ष की दुर्दशा पर निबंधकार को बड़ा दुःख है :—

अकाल, महामारी आदि अनेक भयंकर बड़े-बड़े उत्पात देख कल रात को पड़ा-पड़ा मैं सोच रहा था कि यह संसार केवल दुःख का आगार है पर यहाँ के रहनेवाले प्रमाद मदिरा का पान कर ऐसा उन्मत्त हो रहे हैं कि अपने-अपने को सभी सुखी माने हुए हैं और यह निश्चय नहीं होता कि वास्तव में कोई सुखी है या नहीं।······अपना सुख और आराम इन (धनिकों, राजाओं) का सिद्धांत है सर्वसाधारण प्रजा मात्र का लाभ और उपकार क्या वस्तु है सो ये जानते ही नहीं। शरीर इनका हीरा जवाहिरों की जगमगाहट से चमक रहा है पर हृदय में गाढ़ा अंधकार छाया हुआ है।

भारतेंदु-युग के कथात्मक निबंधों की सामान्य प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए कहा जा चुका है कि इनमें वर्णनात्मक स्थलों का बाहुल्य होता है। और, इस युग के इस कोटि के अन्य निबंधों में यह तत्त्व प्राप्त भी है। इसे हम देख चुके हैं। किंतु 'एक अनोखा स्वप्न' में वर्णनात्मकता का प्राधान्य नहीं है। इसमें विचारात्मकता का आधिक्य है।*

श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय भारतेंदु-युग के वर्णनात्मक निबंधकारों के प्रतिनिधि हैं। ये श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के अनुज थे। उनकी कुछ प्रवृत्तियाँ इनमें भी लक्षित होती हैं। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की दृष्टि साहित्य के कला-पक्ष वा उसकी रचना के चातुर्य-पक्ष की ओर विशेष रहती थी। अतः वे प्रायः आलंकारिक शैली का उपयोग करते थे। ठीक यही प्रवृत्ति श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय में भी मिलती है। इनकी रचनाएँ भी प्रायः 'आनंद कादंबिनी' में प्रकाशित हैं। इनके निबंधों का एक संग्रह 'साहित्य हृदय' (प्रथम भाग) नाम से प्रकाशित है। इसके संपादक श्रीनर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय एम० ए०,

---

* यहाँ श्रीबालकृष्ण भट्ट के जिन निबंधों का उल्लेख किया गया है वे सभी 'हिंदी-प्रदीप' में प्रकाशित हैं। कुछ का उल्लेख उनके निबंध-संग्रह 'साहित्य-सुमन' नामक पुस्तक से किया गया है। ये निबंध भी 'हिंदी-प्रदीप' में प्रकाशित हो चुके हैं।

एल-एल० बी० हैं। उपर्युक्त पुस्तक के संपादक ने पुस्तक को 'प्रवेशिका' में श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय की प्रकृति तथा इनकी साहित्यिक प्रवृत्ति के विषय में भी कुछ कहा है। उनका कथन है कि श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय हिंदी-साहित्य में निबंध-रचना के लिए ही अवतरित हुए थे, और इनके सभी निबंध 'स्वांतः-सुखाय' लिखे गए हैं। बाल्यावस्था से ही इनमें आध्यात्मिक प्रवृत्ति तथा विद्या की ओर अगाध स्नेह के कारण इनके निबंधों के विषय वा उनका प्रतिपाद्य प्रायः दर्शन और साहित्य है। ऐसी अवस्था में ये निबंध सामान्य लोगों के लिए नहीं प्रत्युत साहित्यिकों के लिए ही लिखे गए हैं। उक्त 'प्रवेशिका' में श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय के प्रकृति-प्रेम का भी उल्लेख किया गया है। ये प्रकृति के सभी रूपों से प्रेम करते थे, उसके मधुर और कोमल रूप से भी तथा विशाल और विराट् रूप से भी। प्रकृति के उपासक कवि वर्ड्सवर्थ के प्रति इनके झुकाव की चर्चा भी उसमें है। इनकी शैली के विषय में कहते हुए कहा गया है कि ये बाणभट्ट की शैली के अनुयायी थे, किंतु उसमें इनका अपनापन भी है। यह भी कहा गया है कि अँगरेज लेखक काउपर की ओर इनकी अभिरुचि विशेष थी, जो रात-दिन सिंगार में लगा रहता था। स्मरण रखने की बात यह है कि श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय के विषय में ये बातें उनके एक नजदीकी व्यक्ति द्वारा कही गई हैं।

श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय के निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता है उनमें वर्णनात्मकता की स्थिति; जिसका संबंध काव्यत्व से है; अर्थात् ऐसे स्थलों को लाने से है जिससे पाठक वा श्रोता की वृत्ति रमती हुई चले। वर्णन की ओर अधिक रुचि होने के कारण निबंधकार निबंध में वर्णनसापेक्ष्य स्थलों के आ जाने पर बिना वर्णन किए आगे नहीं बढ़ता। वर्णनात्मक स्थलों को निबंधकार प्रायः लाता भी रहता है। इनके निबंधों में वर्णनात्मकता की स्थिति के कारण ही उनमें साहित्यिकता वा काव्यत्व अत्यधिक है, जो स्वाभाविक भी है—निबंधों के वर्णनात्मक होने के कारण। वर्णन के आधिक्य के कारण श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय के निबंधों में विषय का प्रतिपादन कम मिलता है और जो मिलता भी है उसमें कोई मौलिकता नहीं लक्षित होती। जहाँ तक निबंधों के विषय का संबंध है वहाँ तक उसमें कोई निबंधकार का चमत्कार नहीं दिखाई पड़ता। इस क्षेत्र में ये प्रायः दूसरों के विचारों अथवा सामान्य प्रचलित विचारों का ही प्रतिपादन करते हुए देखे जाते हैं। इनके विचार भी प्रायः प्राचीनों के-से हैं। इनके वर्णनात्मक निबंधों की शैली आलंकारिक अवश्य है, जिस पर बाणभट्ट का प्रभाव देखा जा सकता है; जैसा कि श्रीनर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय ने कहा है।

ऊपर कहा गया है कि दर्शन की ओर इनकी रुचि विशेष थी। इसका परिणाम यह हुआ है कि इनके जो निबंध आध्यात्मिक विषयों के नहीं हैं, उनमें भी इसका प्रसंग आ जाने पर ये आध्यात्मिक विषयों की चर्चा विस्तार से करते हैं। 'पुस्तकों की महिमा'* में यह बात देखी जा सकती है।

विद्या की ओर निबंधकार की रुचि वा उसके व्यापक अध्ययन को दर्शन भी उसके निबंधों में प्रायः विदेशी विद्वानों के उद्धरणों की स्थिति के द्वारा हो सकते हैं। निबंध के आरंभ में तो कोई न कोई उद्धरण निबंधकार अवश्य रखता है, और निबंध के अंत में प्रायः भावात्मक शैली में प्रतिपाद्य विषय का स्तवन करता है। 'पुस्तकों की महिमा',* 'प्रेम',† 'लक्ष्मी'‡ आदि निबंधों के देखने से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

निबंधों में यत्र-तत्र निबंधकार ने अपने जीवन से संबद्ध मित्रों, घटनाओं, वस्तुओं आदि का उल्लेख किया है। इनके निबंधों में न समय की छाप ही मिलती है और न हास्य-व्यंग्य और विनोद की स्थिति ही, जो भारतेंदु-युग के निबंधों की प्रमुख प्रवृत्ति है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय को भारतेंदु-युग के वर्णनात्मक निबंधकारों का प्रतिनिधि इसी कारण स्वीकार किया गया है कि सभी प्रकार के निबंधों को प्रस्तुत करते हुए इनकी दृष्टि वर्णन पर ही विशेष रहती है। वर्णन में यदाकदा भावात्मकता का पुट भी आ जाता है। इसे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि इन्होंने विशुद्ध वर्णनात्मक निबंध नहीं लिखे हैं, अवश्य लिखे हैं, और उन्हीं में इनकी पूर्ण कला का प्रकाश मिलता है।

श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय के निबंधों की एक कोटि और है, और वह है विचारात्मक निबंधों की। इनके विचारात्मक निबंधों के सामान्यतः तीन विषय हैं। एक साहित्य, दूसरा मनोविकार और तीसरा जीवन वा समाज। साहित्य विषय पर लिखा हुआ निबंध 'कविता'†† है। यद्यपि यह निबंध विचारात्मक है तथापि इसमें वर्णनात्मक तथा भावात्मक स्थल विद्यमान हैं। निबंध में कविता के संबंध में कोई नवीन वा मौलिक विचार नहीं व्यक्त हुए हैं। इसमें प्रायः प्रचलित प्राचीन विचारों का ही उल्लेख मिलता है। विद्वानों के उद्धरण भी इसमें अनेक हैं। निबंध में निबंधकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति यत्र-तत्र हुई है। एक स्थान पर निबंधकार कहता है कि जब मैं एक बार विपदग्रस्त हुआ तब

---

* साहित्य-हृदय (प्रथम भाग) पृष्ठ ६।

† वही, पृष्ठ ५२। ‡ वही, पृष्ठ ३७। †† वही, पृष्ठ २२।

कवियों वा उनके काव्यों ने ही मुझे बचाया। इसी प्रकार एक स्थल पर वह यह भी कहता है कि जिन लोगों की रुचि काव्य और प्रेम की ओर नहीं है उनसे मैं नमस्कार-प्रणाम के अतिरिक्त और कोई व्यवहार नहीं रखूँगा, चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न हों।

'प्रेम',* 'संतोष',† 'क्षमा'‡ 'आनंद'‡‡ आदि इनके मनोविकारों पर लिखे गए निबंध हैं। परंतु इनमें मनोविकारों पर दृष्टि रख कर साहित्यिक विवेचन नहीं किया गया है। इन निबंधों में इन मनोविकारों का जीवन में व्यावहारिक वा चलता रूप क्या है, इसी का वर्णन है। इनके प्रतिपादन में विचारात्मकता का प्राधान्य अवश्य है, परंतु वर्णनात्मक और भावात्मक स्थल भी आए हैं। इनमें निबंधकार के व्यक्तित्व की छाप भी मिलती है। 'क्षमा' में वर्णनात्मकता तथा भावात्मकता कम है। 'आनंद' में आध्यात्मिक पुट विशेष है।

जीवन वा समाज से संबद्ध निबंधों के अन्तर्गत सामान्यतः ये निबंध आते हैं—'मित्र,'⊙ 'पुस्तकों की महिमा',¶ 'लक्ष्मी',|| 'विवाह',§ 'जन्मभूमि', ●। इन विचारात्मक निबंधों की प्रवृत्ति ठीक वैसी ही है जैसी उपर्युक्त दोनों प्रकार के निबंधों की। 'लक्ष्मी' शीर्षक निबंध के अंत में निबंधकार लक्ष्मी से अपने पर तथा भारतवर्ष पर कृपा करने की प्रार्थना करता है।

श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय के विशुद्ध वर्णनात्मक निबंधों के विषय निबंध के प्रकार की दृष्टि से बड़े उपयुक्त हैं। कुछ का संबंध ऋतु से है, कुछ का पर्व-त्योहार से, कुछ का स्थान से और कुछ ऐसे हैं जिनका संबंध निबंधकार के जीवन से होने के कारण उसने उन्हें वर्णनात्मक रूप दिया है। 'फाल्गुन',★ 'आषाढ़ का आरंभ',§§ 'शरद'× आदि निबंधों का संबंध ऋतुओं से है। 'फाल्गुन' शीर्षक निबंध में कहा गया है कि पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा तथा सभ्यता से अभिभूत होने के कारण हम स्वाभाविक त्योहारों को भी नहीं मना पाते। 'शरद' शीर्षक निबंध में वैयक्तिकता की संस्थिति विशेष है। इन निबंधों का संबंध ऋतुओं से होने के कारण प्रकृति से भी है। परंतु इनमें प्रकृति का यथार्थ संश्लिष्ट चित्रण नहीं है, प्रत्युत प्रायः आलंकारिक चित्रण ही है। एक स्थल देखें—

बादलों ने ऐसा गर्जन आरभ किया मानों महेंद्र अपनी सकल स्वर्गीय सेना के साथ गगन कानन में परिभ्रमण करते, सहस्रों मेघ

---

* वही, पृ० ५२। † वही, पृ० १००। ‡ वही, पृ० १२१।
‡‡ वही, पृ० १५५। ⊙ वही, पृ० १। ¶ वही, पृ० ९।
|| वही, पृ० ३७। § वही, पृ० ६७। ● वही, पृ० १११।
★ वही, पृ० ९१। §§ वही, पृ० ८१। × वही, पृ० २०४।

मातंगों पर अकस्मात् विद्युत बाण का दारुण प्रयोग करते और वे बेचारे विह्वल हो आर्तनाद कर रहे हैं। वा सम्राट् सुरेंद्र के आगमन में कर्ण को बधिर करनेवाली शतघ्नियों की बाढ़ें छूट रही हैं। (आषाढ़ का आरंभ)

एकाध स्थल पर विशुद्ध प्रकृति-वर्णन भी है—

आकाश में चिड़ियाँ कैसी लंबी-लंबी चुभ्भी मार-मार कर नीचे आने का प्रयत्न कर रही हैं। गौ आदि पशु जंगलों से भागते, शोर मचाते, इस भयंकर तूफान की सूचना देते, घरों की ओर भागते चले आ रहे हैं। भेंड़, बकरी आदिक जो प्रकृत्या मंदगामिनी होतीं, वे भी इस समय ऐसे वेग से अपने-अपने चरवाहे और कुत्तों के साथ-साथ भागी चली आ रही हैं, मानों वायु ने उनके शरीर में बिजली भर दी हो। (वही)

पर्व-त्योहार पर लिखे गए निबंध 'श्रीशीतलगंज की जन्माष्टमी',* 'श्रीशीतलगंज की द्वितीय जन्माष्टमी',† आदि हैं। इनमें 'कादम्बरी' की वर्णन-शैली का अच्छा अनुकरण यत्र-तत्र मिलता है। जैसे—

रसिक राज होते हुए भी योगिराज; रात्रि को सब गोपिकाओं की सेज पर सोते हुए भी घर के बाहर पाँव न निकालनेवाले; संसार की चिंताग्रस्त वीथियों में विचरते हुए भी निश्चिंत; रूप अग्नि में रहते हुए भी जिसके पाँव नहीं जले; गोपाल होते हुए भी लोकपाल; आभीर होते हुए भी पंडित; मधुरिपु होते हुए भी मधुप्रिय; बंसीवाले होते हुए भी बंसी के लगानेवाले नहीं; त्रिभुवन विजयी पर नृपति नहीं, गोपिका रासमंडल में विचरनेवाले पर नक्षत्र नहीं...... । (श्रीशीतलगंज की जन्माष्टमी)

स्थान से संबंध रखनेवाले निबंध 'लखनऊ'⊙ आदि हैं। 'लखनऊ' शीर्षक निबंध में वहाँ के मनुष्यों तथा स्थानों का वर्णन है।

'हमारी मसहरी'‡‡ और 'हमारी दिनचर्य्या'● शीर्षक निबंध बड़े ही प्रौढ़ वर्णनात्मक निबंध हैं। वर्णन की 'कादंबरी' वाली शैली का अनुकरण इनमें भी मिलता है। इन निबंधों द्वारा निबंधकार की दोनों प्रधान प्रवृत्तियों—प्रकृति-प्रेम तथा अध्यात्म-प्रेम—का अच्छा परिचय मिलता है। 'हमारी दिनचर्य्या' में निबंधकार के प्रकृति-प्रेम का अच्छा रूप लक्षित होता है। इसमें प्रकृति-क्षेत्र में पर्यटन का ही वर्णन है। 'हमारी मसहरी' शीर्षक निबंध में इसका वर्णन है कि मसहरी 'यह' है और 'वह' है। इसमें 'सूर्योदय' तथा 'चंद्रोदय' की काव्यात्मक वर्णन-शैली के दर्शन होते हैं। निबंधकार मसहरी में बैठा-बैठा अपनी कल्पना

* वही, पृ० १२८। † वही, पृ० १७७। ⊙ वही, पृ० १९३।
‡‡ वही, पृ० ११७। ● वही, पृ० १४१।

द्वारा अनेक ऋषि-मुनियों, विद्वानों आदि का साक्षात्कार करता है और उनके निवासस्थान तक जाता है। इस निबंध में काल्पनिकता विशेष है। यह वाक्-पटुता के प्रदर्शन तथा मनोरंजन के लिए लिखा गया प्रतीत होता है।

निबंध प्रस्तुत करने की शैलियों की दृष्टि से भारतेंदु-युग के प्रतिनिधि साहित्यिक निबंधकारों की प्रवृत्तियों की मीमांसा के पश्चात् भी उस युग के एक विशिष्ट साहित्यिक निबंधकार से दृष्टि नहीं फेरी जा सकती। यहाँ अभिप्राय श्रीबदरीनारायण चौधरी प्रेमघन' से है। उस युग के ये भी ऐसे साहित्यकारों में थे जिनकी दृष्टि साहित्य के सभी अंगों पर गई थी। निबंध भी इन्होंने अनेक प्रस्तुत किए। इनके निबंधों पर विचार करते हुए स्मरण रखने की बात यह है कि इन्होंने सामाजिक निबंधों की रचना ही अधिक की है। परंतु चाहे किसी भी प्रकार के निबंध प्रस्तुत किए हों, सभी में साहित्यिकता की पूरी छाप है। ये साहित्य-रंग में रँगे व्यक्ति थे भी। साहित्य की झलक इनके व्यावहारिक जीवन में भी मिलती थी। इनकी साहित्यिकता के विषय में कहना यह है कि वह प्रायः चमत्कारवादी ढंग की थी; जो सामाजिक निबंधों में कम और साहित्यिक निबंधों में अधिक दिखाई पड़ती है। भाषा में सानुप्रासिक लच्छेदार पदावली, तुकदार वाक्यों और वाक्यखंडों का प्रयोग उनकी चमत्कारवादिता का द्योतक नहीं, तो क्या है? और, यह चमत्कारवादिता न्यूनाधिक रूप में उनके दोनों श्रेणी के निबंधों में मिलती है। इस प्रकार हमें विदित यह होता है कि साहित्यगत कला-पक्ष की ओर इनकी दृष्टि अधिक रहती थी। इनके कला-पक्ष का प्रभाव इनके भाई श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय पर भी पड़ा, इसकी चर्चा हो चुकी है। परंतु इनकी कलागत चमत्कारवादिता में अवसरानुकूलता नहीं है। चमत्कार दिखाने की झक इन्हें सवार रहती थी। इनके सामाजिक निबंधों में यह देखा जा सकता है। हाँ, साहित्यिक निबंधों में इसका आधिक्य अवश्य है, और इसके लिए यह उपयुक्त स्थान भी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस साहित्यकार की प्रवृत्ति कला-पक्ष की ओर विशेष होगी उसकी रचना में वर्णनात्मकता का प्राधान्य भी होगा। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के निबंधों में वर्णनात्मकता की अधिकता मिलती है। इनके सामाजिक निबंधों में भी यह यत्र-तत्र विद्यमान है। इसी कारण इनके साहित्यिक निबंधों में वर्णनात्मक निबंध ही अधिक हैं। जैसे, 'परिपूर्ण पावस',※ 'गंगासागर सगम यात्रा' × आदि। प्रथम निबंध में पावस-

※ आनंद कादंबिनी, खंड १, संख्या २, संवत् १६३८ वि०

× वही, खंड ६, संख्या ११-१२, संवत् १९६३ वि०

ऋतु के प्राकृतिक रूप, रास-रंग, आमोद-प्रमोद आदि का वर्णन है। एक उदाहरण देखें—

सत्य है! वे क्योंकर जी सकें जब कि ऐसा प्रबल शत्रु अर्थात महाराज पावस वीरेश कि जिसकी सहायता के बिना काम बेकाम सा रह सकाम कृपा कटाक्ष की कामना करता है अपने समस्त साज समाज को साज आज आया; देखो यह गरज के मिस तोपैं छूटने लगीं, कि आकाश धूम स्याम घन सघन से घिर समस्त संसार को अंधकारमय बना दिया; इंद्रधनु रूपी धनुष से बूँदियों के बाणों की वर्षा होने लगी, बकावलि सैन समूह के संग देखो यह बिजली के पटा को फिराता कौन चला आता, क्या यह सावन सेनापति है? अवश्य! देखो यह दादुर नक़ीब बोलते हैं।

रूपक बाँधने की प्रवृत्ति का आधिक्य इस उदाहरण से देखा जा सकता है।

द्वितीय निबंध भी वर्णनात्मक ही है, यद्यपि इसमें वर्णन की कमी और विवरण का ही आधिक्य है। जैसे, जहाज के कष्टों का विवरण आदि। इसमें जहाज तथा सरकार की अव्यवस्था पर टीका-टिप्पणी भी है।

इन्होंने साहित्य और भाषा संबंधी विषयों पर भी निबंध लिखे हैं। जैसे, 'नागरी समाचार पत्र और उनके संपादकों का समाज'* आदि निबंध। इस निबंध में हिंदी के समाचार पत्रों की अव्यवस्था की चर्चा की गई है। ऐसा करते हुए 'भारत-मित्र' तथा 'सरस्वती' के झगड़े का ही विशेष रूप से उल्लेख है।

श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के ऐसे निबंध जिनमें वर्णनात्मकता की कमी है वा वह नहीं है उनमें लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग अच्छा हुआ है। जैसे, 'थोर तो लिखेन तुलसीदास, अधिक गाए भगतन', आदि में।

———

* वही, माला ६, मेघ ५, संवत् १९६३ वि०

६

शैली

भारतेंदु-युग के निबंधों की मीमांसा करते हुए उसकी गद्य-शैली पर दो-चार शब्द कहे गए हैं—विशेषतः उस युग के निबंधकारों पर व्यष्टितः विचार करते हुए। परंतु गद्य-निर्माण की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण भारतेंदु-युग की गद्य-शैली पर उतना ही तो अलम् नहीं है। भारतेंदु-युग ने जैसे नवीन गद्य की आधार-भूमि स्थापित की वैसे ही उसने गद्य-शैली का भी नवीन रीति से निर्माण करने का श्रीगणेश किया, जिसकी प्रेरणा और आधार पर आगे की गद्य-शैली उत्तरोत्तर विकसित होती गई। कहना न होगा कि जिस प्रकार भारतेंदु-युग का गद्य आरंभिक अवस्था में था उसी प्रकार उस युग की गद्य-शैली भी आरंभिक अवस्था में ही थी। कारण कि भाषा और शैली का घनिष्ठ संबंध है।

जैसे भाषा भावों और विचारों की वाहिका है वैसे ही शैली की भी वाहिका है, क्योंकि शैली भाषा के रूप में ही हमारे संमुख आती है; जहाँ भाषा नहीं वहाँ शैली नहीं। इस प्रकार भाषा वह सामान्य तत्त्व स्थापित होती है, जिसका संबंध भाव और विचार से भी है और शैली से भी। भाव और विचार तथा शैली के बीच का वा मध्यग तत्त्व भी इसे स्वीकृत किया जा सकता है। वह इस प्रकार कि भाव और विचार भाषा से होकर तब शैली के रूप में संस्थित होते हैं। पहले भाव और विचार उदित होते हैं, तब उसके अनुकूल भाषा बनती है, और तब भाषा की काया में शैली की प्राण-प्रतिष्ठा होती है। इस प्रकार भाव और विचार, भाषा तथा शैली अन्योन्याश्रित हैं।

भाव और विचार तथा भाषा का संबंध स्पष्ट है। प्रकृति द्वारा मानव को वाणी का वरदान भाव और विचार की अभिव्यक्ति के लिए ही मिला। यदि ऐसा न हुआ होता तो मानव की वैसी ही अवस्था होती जैसी युद्ध की सारी साज-सज्जा से युक्त उस सैनिक की होती है जो संमोहन मंत्र द्वारा मोहित कर दिया जाता है, जो अस्त्र-शस्त्र रहते हुए भी नहीं लड़ पाता। मानव अपने सारे

भावों और विचारों को लिए छटपटाया करता। अक्षि-निकोच और पाणि-विहार से वह अपने कितने भाव और विचार व्यक्त करता!* और इन्हें कितनी स्पष्टता-पूर्वक व्यक्त कर पाता! मान लीजिए कि वह ऐसा कर भी लेता तो क्या इससे साहित्य का निर्माण होता! भाव और विचार तथा भाषा के संबंध का यह तो एक व्यावहारिक पक्ष हुआ। इनके संबंध का एक मनोवैज्ञानिक पक्ष भी है। वह यह कि भाषा भाव और विचार की प्रबल प्रेरणा का फल है। भाव और विचार जब इतने प्रबल, गंभीर और तीव्र हो जाते हैं कि उनको व्यक्त किए बिना हृदय और बुद्धि को कल नहीं मिलता तब भाषा का निर्माण होता है। साहित्य के निर्माण का मूल भी भावों और विचारों की यह प्रबल, गंभीर और तीव्र प्रेरणा ही है। यहाँ उनकी बात नहीं की जा रही है जिनके पास आत्माभिव्यक्ति का आंगिक और शाब्दिक साधन नहीं है अथवा जो ऋषि मुनि की कोटि के हैं और अपने भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त होने से रोकने की क्षमता रखते हैं।

भावों और विचारों की वाहिका भाषा की अभिव्यक्ति की मानसिक प्रक्रिया पर भारत के प्राचीन भाषाशास्त्रियों तथा वैयाकरणों की दृष्टि भी गई थी। भाषा का चरमावयव वाक्य माना जाता है, परंतु वाक्य को वर्णों के समूह शब्दों के समुदाय के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता है। पाणिनि मुनि ने भाषा के मूल तत्त्व वर्ण की उत्पत्ति की मानसिक प्रक्रिया का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि आत्मा अपने में स्थित अर्थों को बुद्धि के आश्रय से मन के पास ले जाकर उसे (मन को) उन्हें व्यक्त करने की ओर लगाती है। इतना होने पर मन शरीर की अग्नि पर चोट करता है और यह अग्नि वायु को प्रेरित करती है। वायु उठ कर मूर्धा की ओर जाती है, उस पर टक्कर लगने पर जब वह लौटती है तब वही मुख में आकर वर्णों को उत्पन्न करती है।† वर्णोच्चारण की इस मानसिक प्रक्रिया पर संदेह करने की गुंजायश नहीं प्रतीत होती। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भाषा निराकार भावों और विचारों की साकार कल्पना है। भाषा साकार तो न हो पाती यदि मानव द्वारा लिपि-निर्माण न हुआ होता।

भावों और विचारों तथा भाषा के संबंध का एक रूप यह भी है कि भाषा भावों और विचारों की अनुगामिनी है। भाव और विचार जैसे होंगे भाषा भी

---

* अंतरेण खल्वपि शब्दप्रयोगं बहवोऽर्था गम्यंते अक्षिनिकोचैः पाणि-विहारैश्च। महाभाष्य, २।१।१।

† आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युंक्ते विवक्षया। मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।···सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः वर्णाञ्जनयते। पाणिनि-शिक्षा ६ और ६।

वैसी ही होगी। भावों और विचारों की गंभीरता और हलकापन, उनकी तीव्रता और शिथिलता, उनकी मधुरता और रूक्षता आदि के अनुकूल ही भाषा भी अपने विभिन्न रूप धारण करती है। स्मरण रखने की बात यह है कि यहाँ बात उन्हीं लेखकों की की जा रही है जो समर्थ हैं, जो अपने भावों और विचारों को सफलतापूर्वक समर्थ और अनुकूल वाणी में व्यक्त कर लेते हैं। एक बात और है। हम चर्चा साहित्य की कर रहे हैं, जिसमें अपने भावों और विचार को अभिव्यक्त करने के लिए साहित्यिक रुख अवश्य ही अख्तियार करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में भाषा में भी साहित्यपन आना अनिवार्य है। साहित्य-निर्माण के लिए साहित्यिक भाषा का होना आवश्यक है।

भावों और विचारों तथा भाषा के संबंध का दूसरा रूप यह है कि हृदय और बुद्धि में भाव और विचार जिस रूप में उठते हैं भाषा में अभिव्यक्त होकर वे उसे भी अपने उठने की गति के अनुसार ही गति दे देते हैं। भावों और विचारों की अभिव्यक्ति की सचाई भी यही है कि वे हृदय और बुद्धि में जैसे रूप धारण करें भाषा द्वारा भी वैसे ही रूप में व्यक्त कर दिए जायँ। भावों और विचारों तथा भाषा के संबंध की स्वाभाविकता भी इसी प्रकार कायम रह सकती है। भाव और विचार उठें तो दूसरे रूप में और उन्हें व्यक्त किया जाय दूसरा रूप देकर, ऐसी स्थिति में भाषा में तो बनावटीपन आएगा ही भावों और विचारों की भी सम्यक् परिस्थिति का बोध न हो सकेगा; और इसका प्रभाव शैली पर भी बुरा पड़ेगा। शैली भावों और विचारों की दृष्टि से अयथार्थ हो जायगी। हम कहना यह चाहते हैं कि भाषा में गति की स्थिति के कारण भाव और विचार ही हैं। भाषागत वाक्यों की बनावट, उनका छोटा-बड़ा होना, उनमें प्रवाह की स्थिति, उनका आरोह-अवरोह आदि तत्त्वों का संनिवेश भावों और विचारों के हृदय और बुद्धि में उठने की क्रिया के प्रभाव और प्रेरणा के कारण ही होता है। भाव और विचार जिस रूप में उठेंगे वाक्य भी उसी के अनुकूल होंगे। भावों और विचारों की गंभीरता के कारण भाषा की मंद गति, उनकी भावुकता और प्रबलता के कारण उसकी तेज गति, उनकी काव्यात्मकता के कारण उसकी मंथर गति आदि का होना स्पष्ट ही है।

भाव और विचार तथा भाषा के घनिष्ठ तथा स्वाभाविक संबंध की इस मीमांसा के साथ ही इन पर विचार के एक और पक्ष से विमुख नहीं हुआ जा सकता और वह पक्ष है लेखक वा शैलीकार का। कहा जा चुका है कि लेखक में इस सामर्थ्य का होना आवश्यक है कि वह अपने भावों और विचारों को सफलतापूर्वक भाषा द्वारा व्यक्त कर सके। यदि वह ऐसा न कर सकेगा तो

लेखक कहा भी कैसे जायगा। उसमें इस शक्ति का होना तो आवश्यक ही है। इसके अतिरिक्त किसी लेखक की भाषा संबंधी शास्त्रीय जानकारी और योग्यता का प्रभाव भी उसकी अपनी भाषा पर पड़ता है। उसकी इस योग्यता द्वारा उसे अपनी भाषा के शृंगार में सहायता मिलती है; और, हम देख चुके हैं कि साहित्य-निर्माण के लिए भाषा में साहित्यपन का होना आवश्यक है। अभिप्राय यह कि भाषा में शृंगार के तत्त्वों का संनिवेश लेखक की भाषागत जानकारी तथा योग्यता पर ही निर्भर है। भाषा में अलंकारों की योजना, उसमें भाषा की शक्तियों—विशेषतः लक्षणा, व्यंजना—की संनिहिति, उसमें मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग आदि लेखक की पटुता की अपेक्षा रखते हैं।

भाव और विचार को यदि शैली की आत्मा मान लें और भाषा को उसका शरीर तो शैली का संपूर्ण अंग इस विवेचन से हमारे संमुख आ जाता है। वस्तुतः शैली में भाव और विचार तथा भाषा के तत्त्वों के अतिरिक्त और है भी क्या। भाव और विचार तो शैली की आत्मा हैं ही, ये ही तो इसके अंतरंग हैं। परंतु इसके बाह्यांग भाषा का भी कम महत्त्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि आत्माभिव्यक्ति के लिए, उसे रूप-रंग देने के लिए शरीर की आवश्यकता तो पड़ेगी ही। यदि शरीर ही न रहेगा तो आत्मा रहेगी कहाँ; यही तो उसका आधार है। जैसे बिना भाव और विचार के शैली का निर्माण नहीं हो सकता वैसे ही बिना भाषा के भी उसका कोई आकार नहीं खड़ा किया जा सकता। भाव और विचार की निराकार शैली भाषा द्वारा साकार रूप धारण करती है। इस प्रकार शैली की मीमांसा में भाव और विचार तथा भाषा का महत्त्व सम है। यदि विचार किया जाय तो भाषा का पलड़ा भाव और विचार के बराबर नहीं, कुछ भारी ही दिखाई पड़ेगा। कारण यह है कि भाव और विचार की विपुलता होने पर भी समर्थ भाषा के न रहने के कारण शैली का सुष्ठु निर्माण नहीं हो सकता है। परंतु यह भी कहा जा सकता है कि सुलझे और परिमार्जित भाव और विचार के अभाव में भी शैली समृद्ध नहीं बन सकती। इस प्रकार शैली के अंतर्गत भाव और विचार तथा भाषा दोनों का महत्त्व किसी से कम नहीं ठहराया जा सकता।

भाव और विचार शैली की आत्मा हैं और भाषा उसका शरीर है। शैली की आत्मा तथा उसके शरीर दोनों पर हम विचार कर चुके हैं। इनके पारस्परिक संबंध की चर्चा भी की जा चुकी है। शैली के बाह्यांतर रूप का निर्माण इन्हीं से होता है। अतः शैली की मीमांसा भाव और विचार तथा भाषा की मीमांसा ही है, और, इन्हें हम देख चुके हैं। वस्तुतः शैली भाषा की काया में

भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति है और ऐसी अभिव्यक्ति है जिसमें हृदय और बुद्धि से उद्भूत भाव तथा विचार उसी रूप में स्थित रहते हैं जिस रूप तथा क्रम से वे उनमें (हृदय और बुद्धि से) उदित होते हैं। कहना न होगा कि भावों और विचारों का उदय एक क्रिया है और इस क्रिया में भी व्यवस्था है, क्योंकि एक समय एक ही भाव वा विचार उठते हैं। ऐसी स्थिति में किसी रचना में एक के पश्चात् उठे दूसरे भावों तथा विचारों की पूर्वापरिक लड़ी होती है। अतः भाषा की काया में जब भाव और विचार अभिव्यक्त होने लगते हैं तब उस (भाषा) में भी उनकी यह तारतमिक तथा व्यवस्थित लड़ी रहती है, क्योंकि भाव तथा विचार उसी रूप में अभिव्यक्त होते हैं जिस रूप में वे हृदय तथा बुद्धि से उठते हैं। इस विवेचन का तात्पर्य यह कि शैली भावों तथा विचारों की भाषागत अभिव्यक्ति तो है ही उसमें तारतम्य तथा व्यवस्था भी होती है; अर्थात् वह वही ढंग, प्रणाली वा पद्धति ग्रहण करती है जो ढंग भाव तथा विचार अपने उदय-स्थल में ग्रहण करते हैं। इस प्रकार निश्चित यह होता है कि शैली अभिव्यक्ति की पद्धति, प्रणाली वा उसके ढंग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह 'रीति' ही है।

साहित्यकार का एकांत लक्ष्य होता है श्रोता, पाठक वा दर्शक को प्रभावित करना। शैलीकार भी इस लक्ष्य से विमुख नहीं रह सकता। वह भी तो साहित्यकार ही है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए शैलीकार की वृत्ति अपनी शैली के शृंगार की ओर भी अवश्य जाती है। ध्यान देने की बात यह है कि शैली के शृंगार का तात्पर्य है मुख्यतः उसके बहिरंग भाषा का शृंगार; और भाषा के शृंगार का तात्पर्य है उसमें स्थित शब्द से लेकर वाक्य तक की प्रभावोत्पादक संस्थिति। लोकोक्ति मुहावरे आदि का प्रयोग भी भाषा के शृंगार के लिए ही होता है। शैली के बहिरंग भाषा पर विचार करते हुए हम इन सभी तत्त्वों की ओर ध्यान आकर्षित कर चुके हैं।

शैली में प्रभावात्मकता की संस्थिति के विषय की विवेचना करते समय एक और बात भी विचारणीय है। इसमें तो संदेह नहीं कि शैली की आत्मा का प्रकाश उसके शरीर द्वारा अवश्य होगा। अभिप्राय यह कि हृदय और बुद्धि में भाव और विचार जिस रूप में उठेंगे शैली में उनकी अभिव्यक्ति उसी रूप में होगी। शैली का यथार्थ वस्तुतः यही है। अब स्मरण रखने की बात यह है कि शैलीकार का लक्ष्य प्रभाव डालना होता है। अतः हृदय और बुद्धि से भाव और विचार उठने वा उठाने के साथ ही उन्हें तुरत अभिव्यक्त करने की प्रेरणा के कारण इनके मूल में ही वह इन्हें प्रभावोत्पादक रूप देने की ओर प्रवृत्त रहता है। अर्थात् वह इन्हें प्रभावोत्पादक रूप में ही अपने हृदय वा बुद्धि में

उठाता है। भावों तथा विचारों को वह हृदय तथा बुद्धि से ऐसे गतियुक्त वाक्यों में उठाता है कि वे अभिव्यक्त होकर प्रभाव डालें। प्रभावोत्पादकता के अन्य साधन भाषा के शृंगार-तत्त्व की ओर भी उसकी दृष्टि भावों तथा विचारों के उदय के मूल में ही जाती है। स्मरण रखने की बात यह है कि यहाँ उन लोगों की चर्चा नहीं की जा रही है जो अपनी भाषा वा शैली को हज़ार बार खराद कर तब अपने भाव तथा विचार व्यक्त करते हैं, जिसके कारण वे प्रायः अयथार्थ शैली को रूप देते हैं। स्मरण इसे भी रखना है कि भावों तथा विचारों को उनके मूल में ही उन्हें प्रभावोत्पादक बनाना अभ्याससापेक्ष्य अवश्य है। कोई दो दिनों में शैलीकार बनता भी तो नहीं। इस विवेचन का निष्कर्ष यह कि शैली को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उसके शरीर के शृंगार पर ही दृष्टि रखने की आवश्यकता नहीं है उसकी आत्मा के शृंगार की भी आवश्यकता है, जिसका प्रभाव उसके शरीर पर भी पड़ता है।

शैली पर शैलीकार की वा उसके व्यक्तित्व की पूरी छाप रहती है, इस पर भारतीयों की दृष्टि विलायती लोगों के चेताने से ही नहीं गई। वे स्वतः इससे परिचित हैं। उनके साहित्यकारों वा शैलीकारों के साहित्य वा उनकी शैली में व्यक्तित्व की पूरी छाप है। पंडितराज जगन्नाथ का अक्खड़पन उनके 'रसगंगाधर' की शैली में स्पष्टतः प्रतिबिंबित है विशेषतः वहाँ जहाँ अप्पय दीक्षित सामने आ गए हैं। इसी प्रकार भारतेंदु-युग के सभी निबंधकारों में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप लक्षित होती है। वस्तुस्थिति तो यह है कि शैली पर शैलीकार की छाप पड़ने का सत्य इतना स्वाभाविक है कि उसमें किसी भी प्रकार का व्यवधान पड़ ही नहीं सकता। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को हम दो रूपों में देखते हैं। व्यक्तित्व का एक रूप स्वाभाविक होता है और दूसरा अर्जित। व्यक्तित्व के स्वाभाविक रूप से तात्पर्य उसमें प्रकृतिप्रदत्त वृत्तियों, मनोभावों, स्वभावों आदि से है। व्यक्तित्व के अर्जित रूप से तात्पर्य व्यक्ति के अध्ययन, मनन आदि द्वारा अर्जित ज्ञान के फल से है। किसी शैलीकार की शैली पर उसके इन दोनों व्यक्तित्वों का प्रभाव पड़ता है। शैली पर उसके प्राकृतिक मनोभावों, स्वभावों, वृत्तियों आदि की भी छाप पड़ती है और उसके अध्ययन-मनन आदि द्वारा अर्जित ज्ञान की छाप भी। इन दोनों व्यक्तित्वों में से जिस व्यक्तित्व का प्राबल्य होता है शैली पर उसी की उभार अधिक लक्षित होती है। श्रीप्रताप-नारायण मिश्र के स्वभाव वा वृत्ति की छाप उनकी शैली पर विशेष लक्षित होती है। उनके अध्ययन-मनन की छाप उस पर विशेष नहीं उभर सकी; कारण कि व्यक्तित्व के इस रूप की उनमें प्रबलता थी। इसके ठीक विपरीत

श्रीबालकृष्ण भट्ट की शैली पर उनके अध्ययन-मनन की छाप, उनके अध्ययन-मनन की प्रबलता के कारण, विशेष है। शैली और व्यक्तित्व पर विचार के साथ ही इसे भी ध्यान में रखना चाहिए कि शैलीकार के व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ उसकी शैली भी विकसित होती जाती है। यहीं इसका भी निर्देश कर दें कि शैली पर व्यक्तित्व की छाप तो पड़ती ही है, वह विषयानुकूल भी चलती है; अर्थात् विषय का प्रभाव भी शैली पर पड़ता है। जैसे, विषय के गंभीर होने के कारण शैली भी अवश्य ही गंभीर होगी।

शैली पर शैलीकार के व्यक्तित्व की छाप पड़ती है, और शैलीकार के विकास के साथ ही उसकी शैली का भी विकास होता है, ये तो शैली को प्रभावित करनेवाले व्यष्टि पक्ष हैं। शैली को प्रभावित करनेवाले समष्टि पक्ष भी हैं, अर्थात् समष्टि की छाप भी शैली पर पड़ती है। इस विषय पर विचार के प्रधानतः दो रूप संमुख आते हैं। एक तो यह कि किसी व्यक्ति वा किसी युग की शैली पर उसके पूर्व की शैलियों का प्रभाव और दूसरा यह कि शैली पर समाज वा देश-काल का प्रभाव। किसी व्यक्ति वा किसी युग की शैली पर उनके पूर्व की शैलियों के प्रभाव की चर्चा चलाने पर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि कोई शैलीकार अपने से पहले की शैलियों से बिलकुल नवीन शैली का निर्माण भी कर सकता है? ऐसी परिस्थिति में इसे कैसे स्वीकार किया जाय? यह तो सत्य है कि किसी व्यक्ति वा युग की शैली में अपनापन अवश्य होता है। यह अपनापन ही उसे विशिष्ट रूप प्रदान करता है। यह बात तो ठीक है। परंतु यह भी सत्य है कि इस विशिष्टता वा अपनेपन को लाने में वह पूर्व की शैलियों से प्रभावित अवश्य रहता है। उसका विकास पूर्व की शैलियों के आधार पर अवश्य होता है। पूर्व की शैलियाँ जैसी होंगी उसके विकास में भी उसी के अनुसार विशिष्टता आयेगी। निष्कर्ष यह कि शैली के विकास में पूर्व की शैलियाँ ही प्रधान कार्य करती हैं। उन्हीं की भित्ति पर उसके विकास का निर्माण होता है। अचानक किसी ऐसी शैली का निर्माण, जिसमें अपने पूर्व की शैलियों की अपेक्षा आश्चर्य-जनक विशिष्टता आ जाय और पूर्व की शैलियों से उसका कोई संबंध न हो, विरल ही देखा जाता है। और, यदि ऐसा होता भी है तो उसके लिए अनेक कारण विद्यमान रहते हैं। भारतेंदु-युग वा उस युग के निबंधकारों की शैलियों में विकास की निहिति अवश्य हुई, उसमें विशिष्टता अवश्य आई, परंतु पूर्व की शैलियों का प्रभाव और उसके विकास में पूर्व की शैलियों का आधार अवश्य रहा। यहाँ स्मरण रखने की एक बात यह भी है कि किसी व्यक्ति वा युग की शैली पर उसके पूर्व की शैलियों के बहिरंग का प्रभाव प्रधान रूप से पड़ता है।

शैली पर समाज वा देश-काल का भी प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार जिस प्रकार साहित्य पर उनका प्रभाव पड़ता है। किसी भी युग की शैली से इस तथ्य का उदाहरण उपस्थित किया जा सकता है। भारतेंदु-युग की वा उस युग के निबंधकारों की ही शैली ले लें। भारतेंदु-युग के निबंधकारों की शैली की प्रधान विशेषता है उनमें हास्य-व्यंग्य तथा विनोद की संनिहिति। यह सत्य है कि इस प्रकार की शैली के निर्माण में उस युग के निबंधकारों के व्यक्तित्व का भी प्रभाव था; परंतु इस प्रकार की शैली के निर्माण में उन्हें प्रभूत प्रेरणा और उचित आलंबन मिले समाज से ही। उस युग के निबंधकारों ने उपर्युक्त शैली का उपयोग प्रधानतः रूढ़िवादियों पर चोट करने के लिए किया है, जो नवीन तथा समाजोपयोगी विचारों तथा सुझावों पर ध्यान नहीं देते थे, जो समाज के हित पर दृष्टि रख कर नहीं चलना चाहते थे, लकीर के फकीर ही बने रहना चाहते थे। ऐसे लोगों के प्रति उपर्युक्त शैली का उपयोग कर उन्हें सीधे मार्ग पर लाना उस युग के निबंधकारों का ध्येय था। अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा में ही गर्क हो अपनी भारतीयता को छोड़ नकली अँगरेज बने बाबुओं की खबर भी हास्य-व्यंग्य और विनोद की शैली द्वारा उस युग के निबंधकारों ने ली है। कहना न होगा कि उस युग में समाज का एक अंग ऐसी नकलची प्रवृत्ति धारण करनेवला अवश्य था। इसी प्रकार भारतेंदु युग वा उसके आगे भी वाद-विवाद की जो तीखी शैली चली उस पर उस युग में 'आर्यसमाज' के प्रभूत प्रचार के कारण उसकी कट्टरता तथा रूखापन का भी काफी प्रभाव दिखाई पड़ता है। भारतेंदु-युग के सामाजिक निबंधकारों में व्याख्यानात्मक शैली की नियोजना इसी कारण है कि वे प्रभाव डाल कर उस युग की जनता को समाज-सुधार की ओर अग्रसर करना चाहते थे। ऐसे ही अनेक उदाहरण हैं। अभिप्राय यह है कि शैली पर समाज वा देश-काल का प्रभाव भी पड़ता है।

७

निबंध-शैली

भारतेंदु-युग के पूर्व निबंधों की रचना अति विरल थी, इसे हम जानते हैं। ऐसी परिस्थिति में शैली की अनेकरूपता की स्थापना भी असंभव थी। भारतेंदु युग में निबंधों की रचना का जो कारण हम देख चुके हैं वह इस युग के पूर्व विद्यमान न था। उस समय में विचारों के आदान-प्रदान की सामाजिक आवश्यकता उतनी तीव्र न थी जितनी कि भारतेंदु-युग में थी; और इस सामाजिक आवश्यकता की तीव्रता का प्रधान कारण था अपरिचित विदेशी सभ्यता का भारतीयों पर आक्रमण। इस प्रकार की सामाजिक परिस्थिति के कारण विषय की अनेकरूपता भी आई, जो इस युग के पूर्व न थी। उस समय केवल धार्मिक विषयों का प्राधान्य था। एक तो निबंध-रचना की विरलता दूसरे विषय की एकांगिता के कारण भारतेंदु युग के पूर्व शैली की अनेकरूपता के दर्शन भी नहीं हो सके। इस युग के पूर्व भाषा की अप्रौढ़ता भी शैली में अनेकरूपता लाने में बाधक हुई।

शैली और भाषा के संबंध की घनिष्ठता हम देख चुके हैं। भारतेंदु-युग में शैली-निर्माण के आरंभ का प्रधान कारण है उस युग में विशुद्ध, परिमार्जित तथा समर्थ भाषा की स्थापना। जब भाव और विचार का वाहन ही समर्थ न होगा तो शैली का निर्माण भी कैसे हो सकता है। भारतेंदु-युग के पूर्व भाषा की प्रधान त्रुटियाँ थीं उसमें पंडिताऊपन, व्रजभाषापन तथा पूरबीपन की संनिहिति। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र तथा उनके सहयोगियों द्वारा इन 'पनों' के निवारण का प्रयत्न हुआ और इस कार्य में उन्हें प्रभूत सफलता भी मिली। इन लोगों ने हिंदी-गद्य की भाषा को नवीन रूप दिया; वह रूप जिससे हिंदी के आधुनिक गद्य का आरंभ होता है। इस प्रकार के हिंदी-गद्य की स्थापना के भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र नेता थे, इसमें कोई संदेह नहीं। इस प्रकार शैली-निर्माण के लिए भारतेंदु-युग में समर्थ भाषा की प्रतिष्ठा हुई। इसके साथ ही सामाजिक परि-

स्थितिवश विचारों के आदान-प्रदान के लिए अवसर के कारण अनेक सामाजिक तथा साहित्यिक विषय भी उस युग के निबंधकारों के संमुख आए, जिनको लेकर उन्होंने निबंधों की रचना की। सामाजिक तथा साहित्यिक विषयों को लेकर उस युग के निबंधकारों ने निबंध के सभी प्रकारों को रचा। विचारात्मक, भावात्मक, आत्मव्यंजक, वर्णनात्मक, कथात्मक सभी प्रकार के निबंध उस युग में लिखे गए, इसे हम देख चुके हैं। निबंधों के विषय की अनेकरूपता तथा उन विषयों को अभिव्यक्त करने के प्रकारों में विविधता के कारण भारतेंदु-युग की शैली में भी अनेकरूपता आई। विचार-प्रधान, भावप्रधान वा काव्यात्मक, वर्णनप्रधान—इसमें भी काव्यात्मकता की पूरी छाप रहती है—शैलियों के निर्माण का आरंभ उस युग में हुआ। इन शैलियों के साथ चुलबुली और चटपटी शैली, कथा कहने की शैली, हास्य-व्यंग्य और विनोद की शैली, प्रभावात्मकता के लिए व्याख्यानात्मक शैली आदि अनेक शैलियों की स्थापना भारतेंदु-युग में हुई। शैलीगत इस प्रकार की विविधता भारतेंदु-युग के पूर्व न थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि शैली के आत्मपक्ष की अभिव्यक्ति का सुष्ठु रूप उस युग में स्थापित होना आरंभ हो गया था। इस कार्य में सफलता भी शैलीकारों को मिल रही थी; जिसका मानदंड यह है कि उनकी शैली में अच्छी प्रभावात्मकता है। वे जिस भाव वा विचार को श्रोता वा पाठक तक पहुँचाना चाहते थे, सरलतापूर्वक पहुँचा देते थे और इस रूप में पहुँचाते थे कि वह (श्रोता वा पाठक) उसे ग्रहण कर प्रभावित होता था।

भारतेंदु युग में निबंधकारों का एक समूह ऐसा था जो अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त करनेवाली भाषा पर विशेष दृष्टि रखता था, इन लोगों की दृष्टि शैली के शरीर पर विशेष रहती थी, जिसका संबंध कला-पक्ष से है। ऐसे लोगों की प्रवृत्ति कुछ चमत्कारवाद की ओर थी भी। इस समूह के नेता थे श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'। इन लोगों की भाषा प्रायः सानुप्रासिक होती थी। ये भाषा में प्रायः तुकदार वाक्य, वाक्यखंड और शब्द लाते थे। ऐसा करते हुए इन लोगों की दृष्टि कभी कभी उपयुक्त प्रसंग पर नहीं रहती थी। कोरे चमत्कार के लिए ये ऐसा करते थे। यहाँ एक बात यह कहनी है कि निबंधकारों का यह संप्रदाय ही नहीं, प्रत्युत भारतेंदु युग के प्रायः सभी निबंधकार तुकदार वाक्य और वाक्यखंड लिखने की ओर प्रवृत्त दिखाई पड़ते हैं। विचार करने पर विदित होता है कि भाषागत इस प्रवृत्ति का मूल भारतेंदु-युग के पूर्व के लेखकों की रचनाएँ हैं। श्रीइंशाअल्ला खाँ तथा श्रीसदल मिश्र की भाषा में इस प्रकार की प्रवृत्ति स्पष्टतः लक्षित होती है।

भारतेंदु-युग के निबंधकारों की शैली में लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। सच तो यह है कि लोकोक्तियों तथा मुहावरों का जितना अधिक और सुष्ठु प्रयोग इस युग में दिखाई पड़ा उतना और किसी भी युग में नहीं। इस युग के बाद तो इन पर लोगों की दृष्टि ही धीरे-धीरे कम जाने लगी और वर्तमान युग में तो इनका एक प्रकार से अभाव ही है। इस युग के प्रायः सभी निबंधकार लोकोक्तियों का प्रयोग करते थे। हिंदी की लोकोक्तियों के अतिरिक्त फारसी की लोकोक्तियों का प्रयोग भी ये लोग यदाकदा करते थे। मुहावरों के विषय में भी ऐसी ही बात है। मुहावरेदानी की ओर श्रीप्रतापनारायण मिश्र तथा श्रीबालकृष्ण भट्ट की दृष्टि विशेष जाती थी।

भारतेंदु-युग के निबंधकारों की शैली में उद्धरणों का प्रयोग भी भली प्रकार मिलता है। प्रायः सभी निबंधकार इनका प्रयोग करते थे। उद्धरण प्रायः सभी भाषाओं के होते थे। जैसे, संस्कृत, हिंदी, फारसी, अरबी और अँगरेजी। फारसी, अरबी और अँगरेजी के उद्धरणों की तो कमी दिखाई पड़ती है, परतु संस्कृत तथा हिंदी के उद्धरणों का अधिक उपयोग होता था। श्रीबालकृष्ण भट्ट की दृष्टि संस्कृत के उद्धरणों की ओर विशेष थी।

भारतेंदु युग के निबंधकारों की भाषा में उनके संस्कृत के अध्ययन-मनन के प्रभाव के कारण संस्कृत के कुछ बने-बनाए रूपों का प्रयोग भी अधिक मिलता है। जैसे, अंततोगत्वा, येन केन प्रकारेण, प्रसंगात् आदि। इनका प्रयोग हिंदी में एक प्रकार से अव्यय रूप में हो रहा है, ये अपना रूप नहीं बदलते, ज्यों के त्यों प्रयुक्त होते हैं।

भारतेंदु-युग के निबंधों में प्रयुक्त भाषा के विषय में कहना यह है कि यद्यपि उस युग में लोगों की दृष्टि संस्कृत तथा हिंदी के शब्दों के प्रयोग की ओर विशेष था तथापि फारसी तथा अरबी के शब्दों को न प्रयोग करने का आग्रह भी उनमें नहीं था। वे यथाप्रसंग सभी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते थे। यह तो उस युग में भाषा-प्रयोग का व्यावहारिक पक्ष है। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने "लिखने की भाषा" पर सैद्धांतिक दृष्टि से भी विचार किया है। ऐसा करते हुए उन्होंने संस्कृतयुक्त फारसीयुक्त, अँगरेजीयुक्त आदि अनेक प्रकार की भाषाओं के उदाहरणों को उपस्थित करके दो प्रकार की भाषाओं को लिखने की अनुमति' दी है, जिनमें से एक में तो संस्कृत के शब्द थोड़े हैं और दूसरी 'शुद्ध हिंदी' है —

सब विदेशी लोग घर फिर आए और व्यापारियों ने नौका लादना छोड़ दिया पुल टूट गए बाँध खुल गए पंक से पृथ्वी भर गई पहाड़ी

नदियों ने अपने बल दिखाए बहुत वृक्ष समेत कूल तोड़ गिराए सर्प बिलों के बाहर निकले महा नदियों ने मर्यादा भंग कर दी और स्वतंत्रता स्त्रियों की भाँति उमड़ चली।

× × × ×

पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी मौत के फंद में पड़ गए कि इधर की सुध ही भूल गए। कहाँ तो वह प्यार की बातें कहाँ एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना। हा! मैं कहाँ जाऊँ कैसे करूँ मेरी तो ऐसी कोई मुँह बोली सहेली भी नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊँ कुछ इधर उधर की बातों ही से जी बहलाऊँ।*

यद्यपि भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने लिखने की भाषा का यह आदर्श स्थापित किया तथापि उसमें फारसी, अरबी आदि के शब्दों का प्रयोग भी होता ही रहा। यत्र-तत्र अँगरेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी उस युग के निबधकार करते थे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतेंदु-युग में एक नवीन प्रकार के गद्य का निर्माण हुआ और उसमें सभी प्रकार के भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता निहित की गई। परंतु साथ ही इसे भी नहीं भूल जाना चाहिए कि विकास क्रमिक होता है। परंपरा से चली आती हुई प्रवृत्तियों को सहसा त्याग देना संभव नहीं होता। इसी कारण भारतेंदु-युग के निबंधों की शैली में उस युग के पूर्व के युग की छाप यत्र-तत्र पड़ी ही है। पंडिताऊ, ब्रजके तथा पूरबी प्रयोग, शब्दों के शुद्ध रूप को न रख कर उनके बोलचाल के, देशज वा स्थानीय रूपों को रखना, तात्विक (तात्त्विक), स्मर्ण (स्मरण), दर्श (दरश वा दरस) आदि शब्दों के अशुद्ध वर्ण-विन्यासों की योजना, 'व' के स्थान पर 'ब' का लिखना, मध्य तथा अंत में 'ए' के स्थान पर 'ऐ' लिखने की प्रवृत्ति तथा ऐसे ही अन्य प्रकार के पुराने तथा दुष्ट प्रयोग भी उस युग की भाषा में यदा-कदा मिलते हैं। 'किसी पदार्थों में', 'हर एक आनंदों के लिए', 'सूचना किया जाता' आदि प्रयोग भी उस युग में मिलते हैं।

भारतेंदु-युग की शैली के विषय में अंत में कहना यह है कि उसने नवीन रूप धारण किया अवश्य परंतु पुरानेपन से अपना पीछा पूर्णतः न छुड़ा सकी। उसमें नवीनता का प्राधान्य रहा अवश्य।

भारतेंदु-युग के प्रतिनिधि निबंधकारों की शैलियों के देखने से उस युग की शैली की प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट हो जायँगी।

---

* भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्रकृत 'हिंदी भाषा', पृ० १२-१५।

इसे देखा जा चुका है कि भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने सामाजिक तथा साहित्यिक दोनों प्रकार के निबंध प्रस्तुत किए हैं। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा अनेक प्रकार की शैलियों का उपयोग स्वाभाविक है और उन्होंने ऐसा किया भी। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के सामाजिक निबंधों में वैसे तो यथाप्रसंग अनेक प्रकार की शैलियाँ दृष्टिगत होती हैं, परंतु प्रधानतः उनमें व्याख्यानात्मक शैली तथा हास्य-व्यंग्य और विनोद की शैली दिखाई पड़ती है। इसे तो कहने की आवश्यकता नहीं कि सामाजिक निबंधों का लक्ष्य होता है समाज पर प्रभाव डालना। इस कार्य की सिद्धि के लिए प्रभावात्मकतापूर्ण व्याख्यानात्मक शैली तथा हास्य-व्यंग्य और विनोद की शैली, जिसके द्वारा समाज की त्रुटियों को चुटकी ली जा सके और ऐसा करके त्रुटियों के मार्जन के लिए समाज पर प्रभाव डाला जा सके, बहुत ही उपयुक्त होती है। यहीं यह भी कह दें कि हास्य-व्यंग्य तथा विनोद की शैली का प्रचुर उपयोग उनके साहित्यिक निबंधों में भी हुआ है। इस प्रकार की शैली का उपयोग करते समय वे इसी के अनुकूल वाक्यावली तथा शब्दों का प्रयोग भी करते थे। 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' में यह शैली अच्छी बन पड़ी है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने साहित्यिक निबंध के सभी प्रकारों की रचना की है। अतः उन प्रकारों के अनुकूल अनेक शैलियों का निर्माण भी उनके द्वारा हुआ है। विचार-प्रधान निबंधों में विवेचनात्मक शैली का उपयोग किया गया है; ऐसी शैली का उपयोग जिसमें किसी गंभीर विषय की तह में पैठ कर उसकी मीमांसा की ओर निबंधकार की प्रवृत्ति लक्षित होती है। इस प्रकार की शैली की भाषा के विषय में दो शब्द कहने हैं। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने विवेचनात्मक शैली में दो प्रकार की भाषाओं का प्रयोग किया है। एक तो ऐसी भाषा जिसमें संस्कृत के प्रायः तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे 'नाटकों का इतिहास' में; दूसरे ऐसी भाषा जिसमें सामान्य हिंदी भाषा का प्रयोग है। इस प्रकार की भाषा में बोलचाल में आनेवाले अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग का आधिक्य है। संस्कृत के भी शब्द हैं, परंतु उतने अधिक नहीं। निबंधकार की दृष्टि सामान्यतः चलती भाषा के प्रयोग करने की ओर है। जैसे 'रामायण का समय' की भाषा देखिए—जो कुछ हो, इस बात को लेकर हम इस समय हुज्जत नहीं करते, हम सिर्फ यहाँ वाल्मीकीय रामायण में से ऐसी थोड़ी सी बातें चुन कर दिखाते हैं जो बहुत से विद्वानों की जानकारी में आज तक नहीं आई हैं इसमें हिंदुस्तान की तवारीख, सैर, गुजराम, मुराद आदि शब्दों के प्रयोग भी हैं कई अन्य स्थलों पर भी भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने इस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है। इस प्रकार विदित होता है कि वे उर्दूबहुला भाषा का प्रयोग भी करते थे।

भावात्मक, चटपटी वा मनोरंजकतापूर्ण तथा वर्णनात्मक शैली का प्रयोग भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र द्वारा हुआ है। भावात्मक शैली की भाषा प्रायः आलंकारिक है—उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं से पूर्ण; जैसे, 'सूर्योदय' शीर्षक निबंध की भाषा। चटपटी शैली की भाषा में प्रसंगानुकूल सभी शब्द हैं—संस्कृत के भी, हिंदी के भी, अरबी-फारसी के भी। इस प्रकार की शैली में भाषा-प्रयोग की यह प्रवृत्ति उचित भी जान पड़ती है, क्योंकि मनोरंजन ही इस शैली का प्रधान लक्ष्य होता है, जिसमें चाहे किसी भी भाषा के शब्दों के प्रयोग की छूट मिल सकती है। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के आत्मव्यंजक निबंधों की भाषा भी ऐसी ही है। वर्णनात्मक शैली की भाषा में सामान्य वा प्रचलित हिंदी का प्रयोग भी है और संस्कृतबहुला भाषा का प्रयोग भी।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र द्वारा कथा कहने वा सामान्य विवरण देने की शैली का भी प्रयोग हुआ है। इस शैली में बड़ा प्रभाव है। इसमें सामान्य वा साधारण बोलचाल के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि कथा कहनी होती है। इस शैली में 'निदान', 'उग्र', 'साधन' आदि शब्दों के साथ ही 'खबरदार', 'ढब', 'इशारा' आदि शब्द भी हैं। 'महाकवि कालिदास का चरित्र' तथा 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' की शैली ऐसी ही है।

इस प्रकार विदित होता है कि विषय तथा प्रसंग के अनुकूल भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने अनेक प्रकार की शैलियों का उपयोग किया है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की शैली में मुहावरों, लोकोक्तियों तथा उद्धरणों का प्रयोग भी यथाप्रसंग मिलता है। परंतु उसमें इनका आधिक्य नहीं है। तुकदार वाक्य भी उन्होंने लिखे हैं। परंतु ऐसी प्रवृत्ति उनमें कम लक्षित होती है।

भारतेंदु-युग की शैली की सामान्य प्रवृत्तियों की मीमांसा करते हुए कहा जा चुका है कि विकास क्रमिक होता है। अतः पुराने तथा एकदेशीय प्रयोग तथा शब्द उसमें मिलते हैं। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की शैली के विषय में भी यही कहा जा सकता है। बात नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगी—रहो वा न रहो, आवो चाहे मत आवो, प्रवृत्त होय, शतघ्नी को भी यंत्र करके लिखा है। थावला, मोखा, दवात, बुंद, अचरज, बिथा, कमती, घुट्टमघुट्ट, आछत, तुमारे, तिहवार, जेहलखाना। स्मर्ण, दर्श, प्रकर्ण। कबिगण, कबिता, अपूर्ब। रहै, खुलैगा, तुम्हैं। इन्होंने अँगरेजी शब्दों का प्रयोग भी किया है, परंतु जो प्रचलित हैं उनका ही जैसे, स्टांप, ब्रिटिश, फैशन। इनमें यत्र-तत्र दुष्ट प्रयोग भी मिलते हैं—ईश्वर को अनुग्रह, मीयां साहब ने सुनते ही सिर पीटा रोए गाए बिछौने से अलग बैठे सोग माना।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की शैली में कहीं भी उलझन नहीं दिखाई पड़ती। अपने भावों तथा विचारों को वे सरलता और स्पष्टतापूर्वक व्यक्त कर लेते थे। इनकी भाषा को देखने से विदित होता है कि वह नवीन भाषा है—अपने पूर्व युग की अपेक्षा साफ और सुथरी। वाक्यविन्यास प्रभावोत्पादक है। विषय और शैली के अनुकूल ही वाक्यविन्यास भी है। परंतु यत्र-तत्र पुरानापन अवश्य लक्षित होता है।

जहाँ तक शैली के बहिरंग का संबंध है वहाँ तक भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र तथा श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली में विशेष अंतर नहीं प्रतीत होता। श्रीप्रतापनारायण मिश्र में भी केवल हिंदी और संस्कृत के शब्दों के प्रयोग का ही आग्रह नहीं दिखाई पड़ता। वे अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग भी यथाप्रसंग करते हैं। कहीं-कहीं अँगरेजी शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है। श्रीप्रतापनारायण मिश्र की भाषा की ऐसी प्रवृत्ति स्वाभाविक भी है। कारण कि उन्होंने प्रायः आत्मव्यंजक निबंध लिखे हैं, जिनमें मनोरंजकता की संस्थिति आवश्यक है और इस मनोरंजकता के लिए चलती भाषा की अपेक्षा होती है, जिसमें यथाप्रसंग अरबी, फारसी और अँगरेजी के शब्दों के लाने का अवसर भी उपस्थित हो सकता है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की शैली की भाँति ही श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली में भी मुहावरों, लोकोक्तियों तथा उद्धरणों का प्रयोग हुआ है। परंतु श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली में इनके प्रयोग की प्रवृत्ति भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की शैली की अपेक्षा अधिक लक्षित होती है। मुहावरों के प्रयोग की ओर इनका ध्यान अधिक रहता है। कुछ निबंध तो मुहावरों का चमत्कार दिखाने के लिए ही लिखे गए जान पड़ते हैं। लोकोक्तियों का प्रयोग भी इन्होंने खूब किया है—कभी-कभी फारसी की लोकोक्तियों का भी। उद्धरण इन्होंने प्रायः संस्कृत, फारसी, हिंदी और अरबी से लिए हैं, जो प्रायः छोटे होते हैं—दो-दो, एक-एक पंक्ति के।

शैली में चमत्कार की निहिति के लिए तुकदार शब्द, वाक्यखंड तथा वाक्यों का प्रयोग भी इन्होंने किया है, जैसा भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र करते हैं। पर इस प्रकार के चमत्कार लाने की झक इनमें नहीं लक्षित होती। यत्र-तत्र तथा यथाप्रसंग ही इन्होंने ऐसा किया है। शैलीगत इस प्रकार की तुक-योजना प्रयत्नसाध्य भी नहीं जान पड़ती। उसमें स्वाभाविकता तथा प्रवाह है। कुछ उदाहरण देखें—

'सच है! भ्रमोत्पादक भ्रमस्वरूप भगवान के बनाए हुए भव (संसार) में जो कुछ है भ्रम ही है।' 'जहाँ भरम खुल गया वहीं लाख की भलमंसी

खाक में मिल जाती है।' 'जिसे यह चतुराक्षरी मंत्र न आया उसकी चतुरता पर छार है, विद्या पर धिक्कार है और गुणों पर फटकार है।'

हिंदी में अव्ययरूप में चलनेवाले संस्कृत के बने-बनाए रूपों का प्रयोग इन्होंने भी किया है। जैसे, अंततोगत्वा, प्रत्यक्षतया, सर्वभावेन, न्यायेन। अँगरेजी के शब्द भी इनकी भाषा में मिलते हैं—नेचर, डिग्री, जैंटिल मैंन, लेकचर, डिउटी।

भारतेंदु-युग में भाववाचक का भारी-भरकम रूप बना लेने की कुछ विशेष प्रवृत्ति लक्षित होती है। जैसे, 'क्रूरता' न लिखकर 'क्रौर्य' लिखना, इसी प्रकार 'मत्सरता' न रखकर 'मात्सर्य' रखना। कभी-कभी 'क्रूरता' की वजन पर 'क्रौर्यता' का अशुद्ध रूप भी बना लिया जाता था। श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने भी कहीं-कहीं यह प्रवृत्ति दिखलाई है, जैसे—'धर्मदृढ़ता' को 'धर्मदार्ढ्य' लिखा है। 'प्रबल' से भाववाचक संज्ञा बनाते हुए श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने भी 'प्राबल्य' न रख कर 'प्राबल्यता' रखा है। भाववाचक संज्ञा बनाने की यह प्रवृत्ति बँगला में अत्यधिक है। इस भाषा में 'गंभीरता' न लिख-बोलकर 'गांभीर्य' ही लिखे-बोलेंगे।

पुराने और एकदेशीय प्रयोग भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की भाँति ही श्रीप्रतापनारायण मिश्र में भी मिलते हैं। उदाहरण देखिए—

चाहो ऋषि समझो, चाहो राजा समझो; बीस वर्ष भी नहीं भए। मूड़, गोड़, खुटिहई, हई (है ही), व (और), काहे (क्यों), परलौ (प्रलय), प्रोहित (पुरोहित), रिखियो (ऋषियों) लग, तौ, कहै। यत्र-तत्र पूरबी प्रयोग भी मिल जाते हैं। जैसे, वह इस बात को न माने। (गोड़ी)

इसे देखा जा चुका है कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने सामाजिक निबंध भ लिखे हैं और साहित्यिक निबंध भी। उनके साहित्यिक निबंधों में प्रधानता आत्मव्यंजक निबंधों की है। आत्मव्यंजक निबंधों में चटपटी और मनोरंजक शैली का उपयोग प्रायः होता है, जैसा कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने किया है। ध्यान देने की बात यह है कि इस प्रकार के निबंधों में भी यत्र-तत्र गंभीर वा विचारात्मक स्थल आ गए हैं, अतः शैली भी यत्र-तत्र विचारप्रधान हो गई है। सामाजिक निबंधों में विचारात्मकता का होना स्वाभाविक है। अतः उनकी शैली गंभीर अवश्य हो जाती है। परंतु श्रीप्रतापनारायण मिश्र के सामाजिक निबंधों की शैली की विशेषता यह है कि वह भी वैसी ही मनोरंजक है जैसी आत्मव्यंजक निबंधों की शैली। हाँ, उसमें विचारात्मकता का पुट अवश्य है। परंतु वह किसी

भी प्रकार से बोझिल नहीं जान पड़ती। के वाक्य प्रायः छोटे होते हैं। आत्मव्यंजक निबंधों में ऐसे वाक्य विशेष रूप से व्यवहृत हुए हैं।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र उस प्रभावात्मक शैली का उपयोग करते हुए प्रायः देखे जाते हैं जिसमें व्याख्यानात्मक अंश विशेष होता है। जैसे, ऐसा भी कोई है जो अपने व अपने मित्र तथा अपने बंधु के वा अपने पड़ोसी के वा अपने देश के बालक को देख के प्रसन्न न होता हो ? ऐसा भी कोई है जो सर्वथा रंजपुंज होने पर भी बालक न होने से चिंताकुल न होता हो ? ऐसा भी कोई है। निस्संतान लोगों पर तरस न खाता हो ?

श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली की सब से बड़ी विशेषता है उस पर उनके व्यक्तित्व की छाप की स्पष्ट झलक। इनका शब्द-चयन इस ढंग का है, इनका वाक्य-विन्यास इस ढंग का है, इनके द्वारा मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग इस ढंग का है कि इनके व्यक्तित्व की पूरी छाप इनकी शैली द्वारा मिल जाती है। इसका कारण यह है कि इनकी शैली में बनावटीपन कहीं भी नहीं लक्षित होता। इनकी शैली हृदय में उठे भावों-विचारों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

उपर्युक्त मीमांसा से यह स्पष्ट है कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली की सब से बड़ी विशेषता है उसकी मनोरंजकता। ये प्रधानतः आत्मव्यंजक निबंधकार थे भी। श्रीबालकृष्ण भट्ट ने भी आत्मव्यंजक निबंध लिखे हैं, परंतु अधिक नहीं। ऐसी परिस्थिति में उनके इस प्रकार के निबंधों में मनोरंजक शैली का उपयोग हुआ तो है परंतु इनकी मनोरंजक शैली श्रीप्रतापनारायण मिश्र की मनोरंजक शैली की तुलना में नहीं रखी जा सकती। इनकी शैली में वह चटपटापन नहीं है जो श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली में विद्यमान है। इनकी मनोरंजक शैली में यत्र-तत्र विचारात्मक वा गंभीर शैली का पुट भी मिला है। और, यदि अच्छी तरह विचार किया जाय तो विदित होगा कि ये प्रधानतः विचारात्मक वा गंभीर शैलीकार थे भी। कारण कि इनके सामाजिक तथा साहित्यिक निबंधों में भी विचारप्रधान निबंधों की ही प्रधानता है। वैसे तो इन्होंने सभी प्रकार के निबंध लिखे हैं और उन्हीं के अनुकूल शैलियों का प्रयोग किया है, परंतु इनके सभी प्रकार के निबंधों में विचारात्मकता का पुट है। अतः विचारात्मक वा गंभीर शैली स्वतः आ गई है। ये अध्ययन-मननशील गंभीर व्यक्ति थे भी। इनकी भावात्मक तथा वर्णनात्मक शैलियों में काव्यात्मकता का अच्छा पुट है। इनके कथात्मक निबंध में कथा कहने की उतनी प्रवृत्ति नहीं लक्षित होती जितनी विचारों को उपस्थित करने की प्रवृत्ति। अतः कथा कहने वा विवरण देने की

शैली का अच्छा रूप इनमें नहीं मिलता। इनकी शैली में व्यंग्य व्यक्त करने की अच्छी सामर्थ्य है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट की भाषा में श्रीप्रतापनारायण मिश्र की भाषा की भाँति किसी भी भाषा से शब्दग्रहण करने का विशेष आग्रह नहीं दिखाई पड़ता। ये भी अरबी और फारसी के शब्दों को यथाप्रसंग रखते हैं। श्रीबालकृष्ण भट्ट अँगरेजी के शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक करते थे। भारतेंदु-युग के अन्य निबंधकार भी अँगरेजी शब्दों का प्रयोग अवश्य करते थे, परंतु उनमें इनका आधिक्य नहीं दिखाई पड़ता। प्रचलित अँगरेजी शब्दों की तो बात ही दूसरी है, कठिन अँगरेजी शब्दों का प्रयोग करते समय श्रीबालकृष्ण भट्ट प्रायः उनका हिंदी-पर्याय दे दिया करते थे। परतु कभी-कभी बिना पर्याय दिए भी ये उनका प्रयोग कर देते थे और ऐसे शब्दों का प्रयोग कर देते थे जो अँगरेजी न जानने-वालों को सहज बोधगम्य नहीं हो सकते। जैसे—सरकुलेशन, फिलासोफी, कोच, प्राइमरी एज्यूकेशन, पालिटिक्स, एक्सपोर्ट, रिलीफ वर्क्स, प्यून, सोशल कानफरेंस, कंपिटीशन।

इनकी शैली में मुहावरों, लोकोक्तियों तथा उद्धरणों का प्रयोग भी अधिक मिलता है। संस्कृत के उद्धरणों का ये अत्यधिक प्रयोग करते थे। लोकोक्तियों का प्रयोग भी यथाप्रसंग हुआ है। मुहावरों के प्रयोग की ओर भी इनकी प्रवृत्ति अधिक थी। कुछ निबंध इन्होंने भी, श्रीप्रतापनारायण मिश्र की भाँति, मुहावरों का चमत्कार दिखाने के लिए ही लिखे हैं।

श्रीबालकृष्ण भट्ट में तुकदार शब्द, वाक्यखंड और वाक्य लिखने की अधिक प्रवृत्ति तो नहीं पाई जाती परंतु ऐसी प्रवृत्ति के कुछ स्थल अवश्य मिलते हैं। स्मरण रखने की बात यह है कि यह प्रवृत्ति इनकी आरंभिक रचनाओं में ही प्रायः मिलती है। एक उदाहरण देखिए—"यह उसी करुणा वरुणालय दीनोद्धारक दीनजनपालक दयासागर की कृपा का लेश है कि आज हम इस जून एक ऊन दो के ऊपर सून वाली संख्या में प्रवेश कर रहे हैं।

पुराने तथा हिंदी में प्रचलित संस्कृत के बने-बनाए रूपों का प्रयोग भी ये करते थे। जैसे, हटानैं, हरैं, रीझैं, कहैं, ढहाय के, गवाँय, सत्ता, भाँत-भाँत, ऐगुन, किमपि, निश्चित्तमेव, अंततोगत्वा, दैवात्।

इन्होंने कहीं-कहीं अशुद्ध प्रयोग भी किए हैं। 'कोई समय पहले'। 'हाल में स्वामी दयानंद ने इस्की चेष्टा किया'। 'भूतपूर्व यहाँ के योगी और संयमी अपनी दमन शक्ति और उपदेश से पृथ्वी भर के लोगों को आमंत्रित किए थे'। 'हमारी समाज जर्जरित होती जाती है'।

ऊपर की विवेचना से यह स्पष्ट है कि भारतेंदु-युग के निबंधकारों की शैली की सामान्य प्रवृत्ति फारसी, अरबी आदि के शब्दों के प्रयोग की ओर थी। उसमें उपर्युक्त भाषाओं के शब्दों को न प्रयुक्त करने का आग्रह नहीं दिखाई पड़ता। ध्यान देने की बात यह है कि ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हुए भी वे अपनी शैली में संस्कृत और हिंदी के शब्दों का प्राचुर्य तो रखते ही थे। वे हिंदी के निबंधकार थे ही। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के विचार इस विषय में दूसरे ढंग के थे। वे तत्सम तथा तद्भव शब्दों के प्रयोग के हिमायती थे और उपर्युक्त शब्दों के प्रयोग के विषय में उनके विचार अच्छे नहीं थे, जो इस उद्धरण से स्पष्ट है—

......अधिकांश हिंदी के उन सुलेखकों के लेखों में जो संस्कृत के भी पडित हैं अपनी सरस नागरी भाषा को विशुद्ध हिंदी के सरल और संस्कृत के मनोहर शब्दों से सुसज्जित करने के स्थान पर उर्दू अर्थात् फारसी, अरबी के कठिन, दुर्बोध और अशुद्ध जो प्रायः बेढंगे रीति पर आकर न केवल उस प्रबंध की शोभा का ह्रास करते, वरंच उर्दू पठित पाठकों को रचयिता के अनुचित साहस पर उपहास का अवसर देते, न उसकी अभिज्ञता प्रमाणित कर देते हैं, अवश्य है।❀

श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने इस सिद्धांत का उपयोग अपनी शैली में भी किया है। उनकी शैली में तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग ही मिलता है। अरबी, फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग करते भी थे तो उन्हीं शब्दों का जो अति प्रचलित हैं और हिंदी में जिनका प्रयोग धड़ल्ले के साथ होता है। ये अरबी, फारसी आदि के शब्दों के प्रयोग के पक्ष में तो नहीं थे, परंतु उर्दू और फारसी के उद्धरणों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग इन्होंने किया है। हिंदी तथा संस्कृत के उद्धरण भी इन्होंने रखे हैं। हिंदी लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग तो इनमें काफी मिलता है। शैली के कलापक्ष वा बहिरंग पर दृष्टि रखनेवाले शैलीकार के लिए यह आवश्यक है। और, यह हम पर विदित है कि श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की दृष्टि चमत्कारवाद वा कलापक्ष पर विशेष रहती थी। शैलीगत सौंदर्य के अन्य उपकरणों पर भी इनकी विशेष दृष्टि रहती थी। जैसे, वाक्य में आनुप्रासिक पदावली का प्रयोग, तुकदार वाक्यखंडों, तथा वाक्यों की योजना; इसी प्रकार चमत्कार के लिए ही मुहावरों का अधिक रखना आदि। कुछ उदाहरण देखें—

'उसे इन दोनों दलों की दलादली ने दल दल कर समाप्त कर डाला',

❀ आनंदकादंबिनी, माला ६, मेघ ११, १२।

'इस वर्ष भी कुछ लोगों ने होली मनाई और किसी किसी से कुछ ठिकाने से बोली ठोली बोलते भी बन आई। जहाँ कुछ कचाई है उसके अर्थ आगामि में सुघड़ई लखाई जाने पर ध्यान रहे, व्यर्थ की ढिठाई से हँसाई कराना ठीक नहीं।', 'किंतु बात की बात में वह बात जाती रही और दूसरा ही बात बहना आरंभ हुआ।'

ये कभी-कभी बहुत बड़े-बड़े वाक्य लिखते हैं। परंतु वाक्यों के बड़े होने पर भी उनमें उलझन नहीं रहती। मध्यम वाक्यों (परेंथेटिकल सेंटेंसेज़) के लिखने की प्रवृत्ति भी इनमें अधिक दिखाई पड़ती है। इस प्रकार के वाक्य में किसी छूटी हुई बात को रखने की चाल है जो प्रधान वाक्य में नहीं आ पाती। जैसे--फिर कौन जाने कि यह जोरू की गुलाम जाति उन्हीं के कहने से इस चलन को स्वीकृत किए हो, क्योंकि मुखचुंबन के समय—कि जो प्रथा उनके यहाँ अति अधिकता से प्रचरित है—बहुत सा बाल दुःख का हेतु होता ही होगा।

इनमें भी यदा-कदा पुराने शब्द तथा प्रयोग मिलते हैं। जैसे, तौभी, होई (हो ही), कबी, सबी, तबी, पुस्तकैं, निकालै, करैं आदि। हिंदी में प्रचलित संस्कृत के बने-बनाए रूपों के प्रयोग भी इन्होंने किए हैं। हटात्, बलात्, पूर्णरीत्या, येनकेन प्रकारेण, सुतराम् आदि। भाववाचक संज्ञा के भारीभरकम रूप के प्रयोग की ओर भी इनकी दृष्टि यदा-कदा रहती थी। जैसे, स्वाछंद्य आदि। इनमें भी कहीं-कहीं दुष्प्रयोग मिल जाते हैं—न इससे इस प्रकार का प्रचार दे सके जैसा कि विचार किए थे।

श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने सामाजिक निबंध भी लिखे हैं और साहित्यिक निबंध भी। सामाजिक निबंधों का विचारात्मक होना स्वाभाविक है। जो साहित्यिक निबंध मिलते हैं उनमें कुछ विचारात्मक हैं और कुछ वर्णनात्मक। जो निबंध वर्णनात्मक हैं उनमें काव्य-तत्त्व का अच्छा रूप विद्यमान है। ऐसे निबंधों के लिए इस तत्त्व की आवश्यकता होती भी है। अभिप्राय यह कि इन्होंने प्रधानतः विचारात्मक निबंध ही लिखे हैं। अतः प्रधानतः इन्होंने गंभीर्य शैली का ही निर्माण किया है। इनकी शैली में बड़ी प्रभावात्मकता है—कलापक्ष के कारण भी और विचारों की तेजी के कारण भी। स्मरण रखने की बात यह है कि इनके विचार प्रायः मौलिक होते थे, ऐसी स्थिति में उनका प्रभावपूर्ण होना स्वाभाविक ही है।

———

नामानुबंध

(अ)

अंतस्तत्त्व ७८
अकबर ५६
अप्पय दीक्षित १०६

(आ)

आज (समाचारपत्र) ८८
आनंद कादंबिनी ८, ५६, ६१, ६२, ६३, ९४, ९९, १००, १२०
आर्यसमाज ४१, ४२, ४९, १०८

(इ)

इंडियन नेशनल कांग्रेस ४२, ४९, ५०, ५५, ५९
इंशाअल्ला खाँ ११०
इलबर्ट ४७
इलबर्ट बिल ४७

(ई)

ईस्ट इंडिया कंपनी ३५

(ए)

'एक वंग महिला' ८
एसे ऑन क्रिटिसिज्म ७
एसे ऑन मैन ७

(ऐ)

ऐन इंट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑव् लिटरेचर १५, १६

(क)

कर्जन (लार्ड) ६०
कविवचनसुधा ७५
काउपर ९५
कादंबरी ९८
काव्य-प्रकाश १०
काशीनाथ खत्री ४३, ४५

केशवप्रसाद सिंह ७१
क्रैब १६

(ग)

गीता ८२

(च)

चंद्रभूषण चातुर्वेद्य ४३, ४५
चतुरसेन शास्त्री ७८
चार्ल्सवुड ३५

(ज)

जगन्नाथ (पंडितराज) १०६

(ट)

टकर; एच० सी० ७१
टकर; सी० एम्० ७१

(ड)

डैलहौज़ी ३५

(त)

तोताराम ७१, ७२, ७३

(थ)

थियोसोफिकल सोसायटी ४५

(द)

दयानंद (स्वामी, सरस्वती) ४१, ५०, ५४, ५५, ८२, ११८

(न)

नर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय ९४, ९५
नागरी नीरद ४५, ५०
निबंध-नवनीत ५०, ५१, ५२, ५३, ८४
नियाज—देखिए सदासुखलाल
निसार—देखिए सदासुखलाल
न्यायवार्तिक ५

(प)

पाणिनि १०२
पाणिनि-शिक्षा १०२
पोप, अलेक्जेंडर ७

प्रतापनारायण मिश्र २३, ४३, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५८, ६६, ६६, ७४, ८३, ८४, ८५, ८६, ९१, ९२, ९३, १०६, १११, ११५, ११६, ११७, ११८

प्रवासी ८

(ब)

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ८, ४३, ५०, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ७०, ७४, ९४, ९९, १००, ११०, ११९, १२०

बाइबिल ५१

बाणभट्ट ९५

बापूदेव शास्त्री ७४, ७५

बाबूराव विष्णु पराड़कर ८८

बालकृष्ण भट्ट ८, १७, ४३, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ६७, ६८, ६९, ७१, ७४, ७८, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९३, १०७, १११, ११७, ११८

बालाबोधिनी ४८

बिहारी चौबे ६८, ७४, ७५

बेकन (लार्ड) १६

ब्रह्मसमाज ४५

ब्राह्मण ४६

(भ)

भगवानदीन (लाला) २९, ३०, ७२

भरद्वाजोद्योतकर ५

भारतमित्र १००

भारतेंदु (मासिक पत्रिका) ४४, ६८

भारतेंदु-ग्रंथावली ७७

भारतेंदु-सुधा ६८, ७८, ७९

(म)

मत्स्यपुराण ८२

महाभारत ८२

महाभाष्य १०२
मांटेन १६
माघ ५
मॉडर्न एसेज़ एंड स्केचेज़ १५
मैरियट, जे० डब्ल्यू० १५
मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ४३, ४४, ४५

(र)

रसगंगाधर १०, १०६
राजा भोज का स्वप्ना (पुस्तिका) ७१
राधाचरण गोस्वामी ४३, ४४, ४५
रामचंद्र शुक्ल ५, १४, २८, ६६, ६७, ६८, ७८, ७९, ८९
रामदास गौड़ २९, ३०, ७२
रामदीन सिंह (म० कु०) ८१
रामरणविजय सिंह ८२
रिपन (लार्ड) ४२, ४७

(व)

वर्ड्सवर्थ ९५
विक्टोरिया (महारानी) ३५
विनायक शास्त्री वेताल ७०
वैडरबर्न, विलियम ४२

(श)

शिवप्रसाद (राजा) ६, ७१, ८२
शिशुपालवध ५
शीतलाप्रसाद तिवारी ७४, ७५
श्यामसुंदरदास ७१
श्रीनिवासदास (लाला) ४३, ४४, ६८

(स)

सदल मिश्र ११०
सदासुखलाल २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४
समालोचक ६
सरस्वती ६, १००
सांतबवे १५

साहित्य-दर्पण २०
साहित्य-सुमन ६८, ९४
साहित्य-हृदय ९४, ९६, ६७, ६८
सुखसागर—देखिए सदासुखलाल

(ह)

हडसन, डब्लू० एच० १५, १६
हरिश्चंद्र (भारतेंदु) ७, ६, ४३, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५८, ५९, ६६, ६८, ६६, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७६, ७७, ७८ ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, १०९, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६
हरिश्चंद्र उपाध्याय ७०, ७६, ६०, ६४, ९५, ९६, ९७, ९९
हरिश्चंद्र चंद्रिका ७, ४४, ४७, ४८, ६८, ७३, ७४, ७५, ७७, ७९, ८०, ८१
हरिश्चंद्रचंद्रिका और मोहनचद्रिका ४५, ७६, ८२
हरिश्चंद्र मैगज़ीन ७२, ७३, ७४, ७६, ८०, ८२
हिंदी-निबधमाला ७१
हिंदी-प्रदीप ८, १८, ४६, ५५, ५६, ५७, ५८, ७१, ६४
हिंदूबांधव ४५
हिंदी-भाषा ८१, ११२
हिंदी-भाषा-सार २६, ३०, ७२
हिंदी-साहित्य का इतिहास ५, १४
ह्यूम, ए० ओ० ४२